स्वर्णोपदेश

या

जीवन के लक्ष्य

लेखक

पं० नरोत्तम व्यास

सम्पादक "निर्बल सेवक"

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी

कलकत्ता

२०१, हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में

बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा

मुद्रित ।

फरवरी सन् १९२०

प्रथम बार १०००

मूल्य ॥)

वक्तव्य ।

इस पुस्तक में आठ अध्याय हैं। इन आठों अध्यायों में क्रमशः निम्नलिखित आठ ही स्वर्णोपदेश हैं—

(१) मनुष्यत्व।

(२) चित्तसंयम।

(३) उत्साह की जय।

(४) समयका सद्व्यवहार।

(५) अपने पराजय में निडर रहना चाहिये।

(६) सफलताका मूल्य।

(७) आगे बढ़ो।

(८) सौजन्यता की शक्ति।

इन उपदेशोंका संग्रह मैंने अँगरेज़ी, बँगला, गुजराती और मराठीकी अनेक पुस्तकों को पढ़कर एक प्रकार से स्वतन्त्र-रूप से किया है। कोई भी उपदेश किसी पुस्तक विशेष से अनूदित नहीं किया गया है; पर इतना अवश्य है, कि श्रीयुत सुरेशचन्द्र बैनर्जी की प्रसिद्ध 'Golden Couticils' नाम

की पुस्तक से, वर्णनीय विषय की पुष्टिके लिये, बहुत कुछ अँगरेज़ी उदाहरण लिये गये हैं, अतः उनके लिये मैं उक्त महाशय का हृदय से कृतज्ञ हूँ।

निवेदक—
नरोत्तम व्यास
सम्पादक—'निर्बल सेवक।'

कलकत्ता,
१२ फर्वरी, १९२०

सूचना।

मैंने इस ग्रन्थके "अपने पराजय में निडर रहना चाहिये" शीर्षक अध्याय में, इस ग्रन्थके प्रकाशक श्रद्धेय श्रीयुक्त पण्डित हरिदासजी वैद्य महोदय के अध्यवसाय और परिश्रम की प्रशंसा में जो चन्द शब्द लिखे हैं, वे किसीके कहने सुनने से नहीं; वरन् अपनी इच्छा, उनके लोकोपकारी होने तथा अपनी श्रद्धा और आस्था से प्रेरित होकर लिखे हैं। उन्हें पढ़ कर लोग किसी प्रकारका भ्रम अपने मनमें न होने दें, इसी लिये यह सूचना लिखी गयी है। श्रद्धेय वैद्य महाशय ऐसी-ऐसी प्रशंसाओंके त्रिकालमें भी इच्छुक नहीं हैं।

नरोत्तम व्यास।

पहला अध्याय।

मनुष्यत्व

विवेक वचनावली।

"प्रायः सभी मानवरूपधारी प्राणियोंमें यथार्थ मनुष्यत्व नहीं पाया जाता; पर इसका कारण यह न समझना चाहिए, कि उसके पाने-योग्य संसारको इनी-गिनी ही आत्माएँ हैं; वरन् वह, मनुष्य होने योग्य गुणोंका अनुराग करने से, अनायासही प्राप्त किया जा सकता है।"

—डाक्टर ब्राउन।

"मेरे पिता डाक्टर आरनल्डको मेरा आत्मा सदैव धन्यवाद देता रहेगा, जिन्होंने वास्तविक मनुष्यत्व प्राप्त करने की सीढ़ी-स्वरूप देश-सेवा करनेके लिये मुझे दिन रात उत्साहित किया था।" —जोज़ेफ आरनल्ड।

"मनुष्यको चाहिये, कि वह प्रति दिन एकान्तमें बैठकर, अपने नित्य-नैमित्तिक चरित्रोंकी आलोचना किया करे; जिससे उसे इस बातका भली भांति ज्ञान होजाय, कि उसने आज कौन-कौनसे काम पशुओंकी भाँति किये हैं और कौन-कौनसे काम सत्पुरुषोंकी भाँति किये हैं? कारण,—इस प्रकारकी आलोचना करना, मनुष्यत्व प्राप्त करनेकी पहली सोपान है।" —विष्णु शर्मा।

"सांसारिक समस्त वासनाओंके पूर्ण होनेके अलावा, जो लोग पारलौकिक सुख-वासनाओंकी भी पूर्त्तिकी इच्छा रखते हैं, वे सबसे प्रथम उदारता, कर्त्तव्यनिष्ठता और परोपकारिता का अनुसरण करें। क्योंकि इनके द्वारा, यथार्थ मनुष्यत्व प्राप्त हो जानेसे, मनुष्य स्वयं सर्वसिद्ध हो जाता है।"—रस्किन।

(१)

एक दिन यूरोपके प्रसिद्ध पण्डित ब्राउन नामक एक पादरी ने अपने पिताके मुँहसे निकले इस वाक्यको सुनकर बड़ा आश्चर्य किया था, कि—"मनुष्य होकरभी, हमें मनुष्यत्वका ज्ञान होना कठिन है।" उन्होंने सोचा, पिता यह कैसी अनोखी बात

कह रहे हैं। यदि मनुष्यको अपने मनुष्यत्वका ज्ञान न होगा, तो क्या पशुको होगा ? पर जब यह आश्चर्य्य, समय पानेपर, पिता के सामने व्यक्त किया गया, तो उन्होंने ब्राउनके सामने ऐसे दो पुरुषोंके चित्र रक्खे, जिनमेंसे एक सम्राट् और दूसरा किसान था। चित्रोंको दिखाते समय पिताने कहा,—"देखो पुत्र! यह तो रिचमण्डका एक दरिद्र, श्रमजीवी किसान है; और यह इङ्गलैण्डका भूतपूर्व्व अधीश्वर और तीसरे जार्जका पुत्र 'प्रिंस जार्ज' है। मेरी समझमें तुमने, सामयिक पुस्तकोंमें इन दोनों व्यक्तियोंके चरित्रोंको खूब ध्यानस्थ होकर पढ़ा होगा। अब बताओ, ये दोनोंही व्यक्ति मनुष्य हैं या इनमेंसे एक पशु और एक देवता है ?" ब्राउन उनके इस तात्कालिक आश्चर्य्य-समाधानको सुनकर एकदम चुप होगये और विचारने लगे, कि— "मैं बड़ा मूर्ख हूँ, जो अभी तक मनुष्य और मनुष्यत्वकी परिभाषाको भी नहीं जानता!"

पुत्रको चुप देखकर पिताने कहा,—"क्यों बेटा! एकदम चुप होकर क्या सोचने लगे ? अभी इस बातका ज्ञान हुआ या नहीं, कि मनुष्य और मनुष्यत्व किसे कहते हैं ?"

पुत्रने कहा,—"हाँ देव! अब मैं आपकी इस शिक्षाका हृदयसे आदर करनेके साथ-साथ मनुष्यत्व प्राप्त करनेके उपायोंका अवलम्बन कर, यथार्थ मनुष्य बननेका प्रयत्न करूँगा।"

(२)

वास्तवमें यह बात सच है, कि कुबेरकी भाँति धनका

पंचम जार्ज और तृतीय जार्जके तुल्य आमोद-प्रिय व्यक्ति कभी मनुष्य नहीं कहला सकता ; और यदि कोई व्यक्ति इस बात के भरोसे, अपने तईं मनुष्य बतानेका दावा करे, कि मैंने बहुतसी विद्याएँ पढ़ी है, या अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया है, तो संसारका सुधी-समाज तो उसे मनुष्यकी उपाधि से विभूषित नहीं कर सकेगा। मनुष्यत्वकी परिभाषामें अधिक धनवान या अधिक विद्वान् होनेकी ओर एकदम निर्देश नहीं किया गया है। तब फिर यथार्थ मनुष्यत्व किसे कहते हैं ? हमारी समझ में इस प्रश्नका उत्तर अपने आत्मासेही पूछना चाहिये। क्योंकि—आत्माका मनुष्यत्वसे अति घनिष्ट सम्बन्ध है। एक आदर्श मनुष्य का कथन है, कि जिन व्यक्तियों में आत्मबल है, उनमें यथार्थ मनुष्यत्व है और जो आत्मबल-शून्य हैं, वे यथार्थ मनुष्यत्व-शून्य हैं।

(२)

इङ्गलेण्डके प्रसिद्ध विद्वान् और अफ्रिका-प्रवासी मि॰ पोलक ने ट्रान्सवालकी एक महती सभामें व्याख्यान देते समय महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधीको निर्देश करके कहा था,—"आज संसार अपना मोहावरण दूर करके, मुक्त चक्षुओंसे एक यथार्थ मनुष्यका दर्शन करे और इस बातको हाथों-हाथ शिक्षा लेले, कि संसारमें मनुष्य-शक्ति कितनी प्रबल है ? क्योंकि,— इसी मनुष्य-शक्तिके बल पर आज महात्मा गांधीने समस्त अफ्रिका पर विजय प्राप्त की है।"

सचमुचही यह बात बहुत विवेकके साथ कही गई थी। कारण ;—आत्म-संयम और आत्मत्याग, ये दोनों मनुष्यत्वकी प्राप्तिके प्रधान उपाय हैं। गांधीजीने इन दोनों गुणों की खूब आराधना की है, इसीसे उन्हें यथार्थ मनुष्य या पृथ्वी के देवताकी उपाधि मिली है।

(४)

बहुतसे लोग आत्म-संयम और आत्मत्यागका यह मत-लब लगाते हैं, कि—अपनी उभरती हुई इच्छाओं का दमन करना और प्रत्येक कार्य्यमें अपने शरीर की कुछ परवा न करनाही—आत्म-संयम और आत्मत्याग है। पर हमारी समझमें इन दोनों शब्दों का सरलार्थ अन्य प्रकार का है। हम उनका शब्दार्थ इस प्रकार करते हैं;—मन और इन्द्रियोंको वशमें करनेका नाम "आत्मसंयम" है और परो-पकारके लिये अपने सुख-दुःखकी परवा न करनेको "आत्मत्याग" कहते हैं।

भगवद्गीतामें आत्मसंयमका लक्षण इस प्रकार बताया गया है, —काम, क्रोध, लोभ, मोह और मत्सर्य्य—ये जो आत्माके के शत्रु हैं, इनका बलात्कार दमन करनेके साथ-साथ पंचे-न्द्रियोंका निग्रह करना "आत्मसंयम" है। ऊपर लिखे पंचे-न्द्रिय शब्दसे आँख, कान, नाक, जिह्वा, और त्वचादि पाँच ज्ञानेन्द्रियोंको समझना चाहिये। इन इन्द्रियोंमें सबसे उद्धत-स्वभाव जिह्वेन्द्रिय है। अतएव सबसे पहले इस जिह्वेन्द्रिय

का ही शमन करना मनुष्यका प्रथम कर्त्तव्य है। क्योंकि,—यह दुष्टा क्षणभरमें बड़े-बड़े अनर्थ कर डालती है एवं इस से अनर्थ करानेवाला या इसका प्रवर्त्तक क्रोध है। जिस समय मनुष्यको क्रोध आता है, उस समय वह एकदम हिता-हित-बोध-शून्य होजाता है एवं जिह्वा उस समय अवसर देख तत्काल अपना काम कर जाती है। घर या बाहर जो सामने पड़ जाता है, उसे कटु वाक्य कहनेके लिये तैयार हो जाती है। इसलिए अभ्यास-द्वारा क्रोध और जिह्वा दोनोंको ही वशमें करना चाहिये।

सुअभ्यास बड़ी अच्छी चीज़ है। इसका सेवक कभी सांसारिक व्यापारोंमें धोखा नहीं खाता। अभ्यास करनेसे बड़े-बड़े जड़ मूर्ख पण्डित होजाते हैं; नीच योगी बन जाते हैं। हिन्दुओंके पौराणिक ग्रन्थोंमें, जो अनेक तुच्छ आत्माओंके कुछ ही कालमें महात्मा बन जानेका वर्णन आया है, वह इसी अभ्यासका स्वर्णमय फल है। इसीसे किसी हिन्दी-कविने कहा है,—

"करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर होत निशान॥"

इसी महामहिम अभ्यासके द्वारा यदि हम अपने देहस्थ शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकेंगे, तो हमें निस्सन्देह कुछही कालमें वह दैवी शक्ति प्राप्त हो जायगी, जिसके द्वारा अनायासही संसार पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

काम क्रोधादि प्रबल शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेके लिये, यूरोपकी प्रसिद्ध पण्डिता मिस 'आरबुथ' ने एक बड़ाही सरल अभ्यास बताया है। आपका कथन है,—'मान लीजिये, किसी स्कूलका एक अध्यापक अपने छात्रोंके सामने, किसी देशके मानचित्रको रख, उन्हें उसके विशेष-विशेष स्थानों का परिदर्शन करा रहा है। छात्रों में से कुछ छात्र ऐसे हैं, जो चित्र की ओर एकटक दृष्टिसे अवलोकन करते हुए—उसके निर्दिष्ट स्थानोंकी तस्वीर चित्त-पटपर खींच, उनपर मन-ही-मन आलोचना कर रहे हैं; और कुछ ऐसे छात्र हैं, जिनकी दृष्टि तो मानचित्र पर स्थापित है,पर चित्त वन-उपवनोंकी सैर कर रहा है। अब उन छात्रोंमेंसे जो प्रथम श्रेणीके छात्र हैं, उनकी दृष्टि और मन, मानचित्र के स्थानोंका परिदर्शन करता हुआ, उनकी आलोचना करनेमें भली भांति प्रवृत्त है। वे भविष्यत्में अपने नित्यके इसी अभ्यास-द्वारा संसारके हरेक विषयको अनायास आयत्त कर लेंगे और दूसरी श्रेणीके छात्र सदा अपने प्रयत्नोंमें असफल होंगे।" इससे साबित हुआ कि, जो लोग किसी विषयको अपने वशमें करना चाहते हैं, वे सबसे प्रथम अपने बाह्य और आभ्यन्तरिक नेत्रोंको उस विषय पर मनोयोगके साथ लगाये रखनेका अभ्यास करें। इससे कुछही कालमें, थोड़ासा प्रयत्न करने से ही, मानसिक प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त हो जायगी।

(५)

यदि हम किसी तरह अपनी चित्त-वृत्तियोंको वशमें करलें, तो आधी मनुष्यता हमें उसी समय प्राप्त हो जाय। यथार्थ में मनुष्यत्व का प्रधान निवास-स्थान अपना हृदय है; और आचार-विचारसे हृदय का परिचय होता है। संसारके लोग सुव्यवहारसे मनुष्य और कुव्यवहारसे पशु समझे जाते हैं। यही कारण है; कि पादरी ब्राउनके पिताने तीसरे जार्जके पुत्र को पिशाच या पशु कहा था और रिचमण्डके एक श्रम-जीवी किसानको यथार्थ मनुष्य बताया था। प्रिन्स जार्जने, अतुल सम्पत्ति और निःसीम मानके अधिपति होते हुए भी, अपने ज़माने में, प्रजासे स्वीय स्वार्थकी पूर्त्तिके लिये पशु-व्यवहार किया था और रिचमण्डका वह किसान दिनभर परिश्रम करके, कुटुम्बका पालन करता हुआ भी, दूसरोंके दुःखोंको जी-जानसे दूर किया करता था।

(६)

यथार्थ मनुष्यत्व प्राप्त करनेके लिये, अन्यान्य उपयोगी बातों के सिवा उदारता, परोपकारिता, विनय, शिष्टता, आचारयुक्तता और कर्त्तव्य-निष्ठता,—इन षड्गुणोंकी आराधना और इनको ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि भारतके भूतपूर्व यथार्थ मनुष्य इन्हीं सद्गुणोंके प्रभावसे संसारमें प्रख्यात हुए थे। उदारताके उदाहरणस्थल फ्रान्सकी प्रसिद्ध राजधानी पेरिसके वे विविध कला-युक्त के युवक थे, जिन्होंने एक भूखे और अन्धे फ़कीरके लिये

आत्म-गौरवके प्रचलित सम्माननीय स्वरूपको जलाञ्जलि दे, अपने गुणोंके प्रभावसे, पेरिसकी प्रत्येक दूकानसे एक-एक पैसा माँगा था। परोपकारिताके उदाहरणस्थल लण्डनके वेष्टमिनिस्टर स्कूल का वह छात्र था, जिसने अपने एक अपराधी सहपाठी मित्रको दण्डित होने पर पिता द्वारा निकाले जानेके भयसे बचा, उसके स्थानपर अपने तईं दण्डित कराया था। विनय और शिष्टताके अवतार, भारतके भूतपूर्व एकच्छत्र सम्राट् अकबर थे। आचार-युक्तता पुराकालीन रघुवंशियोंमें यथेष्टरूपसे पायी जाती थी। उनमें भी दिलीप और रघु विशेष उल्लेखनीय हैं। कर्त्तव्य-निष्ठतामें सबसे पहला नाम महाराणा प्रतापसिंह का है।

जिन लोगोंने उपरोक्त महानुभावोंकी जीवन-कथायें पढ़ी होंगी, वे इस बातसे भली भाँति परिचित होंगे। ऐसे महा-पुरुषोंको, आरम्भमें अधिक कष्टोंका सामना करनेपर भी, अन्तमें स्वर्ग-सुख प्राप्त हुए। इतनहो नहीं, संसारमें आज पर्य्यन्त स्थूल शरीरसे न होनेपर भी, यशः शरीरसे वे वर्त्तमान हैं एवं जब तक संसारमें पृथ्वी और आकाशका अस्तित्व है, वे अजर और अमर हैं।

दूसरा अध्याय ।

चित्त-संयम ।

विवेक वचनावली ।

"संसारके प्रत्येक कार्य्यमें विजय पानेके लिये एकाग्र-चित्त होना आवश्यक है। जो लोग चित्तको चारों ओर बखेर कर काम करते हैं, उन्हें सैकड़ों वर्षों तक सफलता का मूल्य मालूम नहीं होता ।"— मार्ले ।

"जो लोग बल-शून्य है और उसके इच्छुक भी हैं, वे अपने सब ऐबोंको दूर करें, इससे उन्हें तत्काल आत्मिक बल नामका एक ऐसा बल प्राप्त होगा, जिससे वे बड़े-बड़े सामर्थ्यशाली अधिकारिवर्ग, साम्राज्य और प्रतापी लोगोंको भी सहजहीमें पछाड़ सकेंगे ।" —म० गान्धी ।

"प्रत्येक पुरुष अपने विचार और कार्य्यों को सदैव ध्यानसे देखे। विचारावली प्रत्येक कार्य्यकी जननी है एवं चित्तकी एकाग्रता या चित्त-संयम उसका पति है ।" —आर्थर हेल्प्स ।

मेरे एक मित्रने पूछा,—"देखता हूँ, आप आरम्भसेही अपनी प्रत्येक परीक्षामें 'अव्वल नम्बर' रहे, पर आपको पढ़ने में अधिक परिश्रम करते कभी नहीं देखा !" मैंने उत्तर दिया,—

"मेरे पास एक फरिश्ता है, जो सदा मेरे हुक्मके मुताबिक काम करता है, परीक्षाओंमें सफलता भी मुझे उसीके द्वारा प्राप्त होती है। मेरे उस फरिश्ते का नाम है 'मन-विजय।'" मेरे उन मित्रने फिर पूछा,—"तुम हँसी तो नहीं करते? क्योंकि—फरिश्ते आदमीके पास आना पसन्द नहीं करते।" मैंने कहा,—"यदि न आते होते,तो मेरा फरिश्ता मेरे पास कैसे आया? यह कोई बड़ी बात नहीं; यदि आप चाहें, तो वह आपके पास भी आ सकता है। पर कुछ दिनों तक उसकी आराधना करनी पड़ेगी।" मित्र बोले,—"किस तरहकी आराधना करनी पड़ेगी?" मैंने कहा,—"केवल चित्तको संयत रखनेकी। इस चित्त-संयमसे मनुष्य बहुत शीघ्र अपने कामोंमें सफलता प्राप्त कर लेता है। इसीको दूसरे शब्दोंमें मन-विजय कहते हैं। मैंने इसी 'मन-विजय' नामक फरिश्तेकी आराधना की है।" —कार्लाइल।

(१)

वर्त्तमान युग विशेषज्ञों का युग है। आजकलकी प्रधान समस्या यह है, कि एक एञ्जिन किस तरह दश घोड़ोंकी शक्ति प्राप्त करे, पर साथही शर्त्त यह है, कि वह एक घोड़े की भाँति एकही एञ्जिनका अधिकार प्राप्त करे। दूसरे शब्दोंमें, आजकलका समाज एक आदमीसे दश आदमियोंकी शक्तिकी प्रत्याशा करता है। जो व्यक्ति किसी एक विषयमें असाधारण कृतित्व दिखा सकता है, समाज उसीके गलेमें जयमाल्य पह-नानेके लिये प्रस्तुत रहती है।

एक साथ पाँच कामोंमें चित्त विक्षेप करनेसे, एक भी काम सुसम्पन्न नहीं हो सकता। सफलता पानेके लिये चित्तकी एकाग्रताकी आवश्यकता है। बहुतसे कामोंको किसी प्रकारसे सम्पन्न करनेकी चेष्टा न करके, एक कामको अच्छी तरहसे कर डालना युग-धर्म्म कहाता है। आजकलके लोग—इसे ही युग-धर्म्मके नामसे पुकारते है। इस युगमें जिन लोगोंकी कर्म्म-चेष्टाएँ बहुत ओर फैली हुई है, उन्हें साफल्यकी आशा बहुत कम है।

(२)

लण्डनकी एक दूकानपर बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखा एक साइनबोर्ड टँगा हुआ था। उस पर यह लिखा था,—"यहाँसे माल और सम्वाद बाहर भेजे जाते है, कारपेट की धूल साफ़ की जाती है एवं प्रत्येक विषय पर कविता-रचना होती हैं।" कहना व्यर्थ है,कि यह दूकान किसी विषयमें भी अपनी कारीगरीका परिचय नहीं दे सकती थी।

(३)

जो लोग अपने काममें सफल और जो अपने काममें विफल होते है, उनमें प्रधान पार्थक्य कामके परिणाम-तारतम्यका नहीं होता, वरन् कामके प्रकारोंमें होता है; अर्थात् कौन किस कामके करनेमें समर्थ था, जिससे उसे सफलता मिली ; और कौन किस कामके करनेमें असमर्थ था, जिससे उसे विफलता प्राप्त हुई। जो लोग अपने कार्य्यमें विफल होते हैं, उनको

विफलता को देखकर लोग यह न समझें, कि उन्होंने अपने कामको भले प्रकार सम्पादित करनेका प्रयत्न नहीं किया होगा। पर असलमें यह बात नहीं है,—काम उन्होंने अवश्य प्रयत्नशील होकर किया, पर उनके कार्य्य-सम्पादक नियम अस्त-व्यस्त थे; उनका असफल काम बहुत कामोंके बीचमें बैठा हुआ था। कामो का परिमाण यथेष्ट होनेपर भी, शक्तिके संयम और चित्त की एकाग्रताके अभावसे सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। विफल-प्रयत्नशील लोग कभी तुच्छ घटनाओंको सुयोगमें परिणत नहीं कर सकते। वे साधु उद्यम पराजयको जयके गौरवसे भूषित करना नहीं जानते। यद्यपि ऐसे लोगोंको सामर्थ्यका अभाव नहीं है, समय भी प्रचुर है; किन्तु ये लोग एक बार आगे जाते हैं और दूसरी वार सबसे पीछे हो जाते हैं। इसी तरह ये लोग एक दिन अपने समस्त जीवनको शून्यतासे भर लेते हैं।

(४)

आप किसी आदमीसे पूछिये, कि उसके जीवनका लक्ष्य और उद्देश्य क्या है?' वह कहेगा,—"मेरा जीवन किस लिये है, यह तो मैं ठीक तौरसे नहीं बता सकता; किन्तु यह मैं अवश्य जानता हूँ, कि परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं होता। तदनुसार मैंने स्थिर किया है, कि समस्त जीवनको दारुण परिश्रममें ग्रथित करूँगा। ऐसा करते-करते कोई न कोई लक्ष्य मिल ही जायगा।" किन्तु यह बात एकदम असम्भव है। क्या बुद्धिमान् जीव सोने-चाँदीकी किसी खानकी खोजमें

सारे देशोंको छानता फिरेगा एवं उनको प्राप्तिकोही अपना प्रधान लक्ष्य समझ सदा-सर्व्वदा योंही घूमा करेगा? इस प्रकार घूमनेवालोंको कभी अपने अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती। आवश्यकता है, काम आरम्भ करनेसे पहले किसी लक्ष्य की। लक्ष्यदृष्टा लोग ही अपने काममें सफल होते हैं। फूलोंके पास कितनेही पतङ्ग आते हैं, पर मधु की प्राप्ति केवल मधुमक्खियोंको ही होती है। यदि हमारे मनमें भविष्य-जीवनके कामों की कोई सुस्पष्ट धारणा नहीं होगी, तो बचपनसे पढ़नेलिखने और परिश्रमके फलसे हम चाहे जितनी रसद का संग्रह करके,संसारभरमें क्यों न घूमते फिरें, किन्तु उससे कुछ भी फल नहीं होगा। प्रमाण स्वरूप;—यदि किसी नाविकाको यह मालूम न हो, कि मुझे किस बन्दर को जाना है, तो उसके भाग्यमें कभी अनुकूल वायु या अनुकूल पथ की प्राप्ति न हो।

(५)

कार्लाइल का कथन है,—"जो लोग अत्यन्त दुर्बल हैं, वे भी एक काम पर अपनी शक्तिको लगाकर कुछ न कुछ सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु जो परम शक्तिमान् हैं और जिनकी सामर्थ्य अनेक कामोंमें बँट रही है, वे प्रायः ही व्यर्थ-प्रयत्न हो जाते हैं। उदाहरण स्वरूप,—पानी की बूँदे अविराम पतनके द्वारा कठिनसे भी कठिन पत्थरमें गढ़ा या छिद्र-पथ पैदा कर लेती हैं, किन्तु प्रखरतोया स्रोतस्वती नदी

उसीके ऊपर होती हुई गम्भीर कल्लोलोंके साथ बहती है, पर उसका पत्थरों पर तनिक भी चिह्न नहीं होता।"

(६)

पादरी ब्राउन का कथन है,—"मैं बचपनमें यह समझता था, कि मनुष्यकी मृत्यु वज्र-प्रहारसे होती है। जब बड़ा हुआ और जब संसारकी बातोंका अनुभव हुआ, तब मुझे मालूम हुआ कि, मनुष्य की मृत्यु वज्र-प्रहारसे नहीं होती, किन्तु विद्युत्‌से होती है। तभीसे मैंने स्थिर कर लिया, कि प्रत्येक मनुष्यको अधिक बोलनेकी अपेक्षा काम ज़ियादा करना चाहिये।"

(८)

आप बन्दूकके कितने ही छर्रोंको गलाकर,एक बड़ीसी गोली बनाइये और उसे चार आदमियों पर छोड़िये—चारोंका सफाया हो जायगा। दारुण शीतकालमें, दिनके वक्त भी, यदि हो सके तो सूर्य्यालोकको संहत या एकत्रित कीजिये; मालूम होगा, उससे बहुत शीघ्र अग्नि उत्पन्न हो जाती है।

मनुष्योंमें भी जो वास्तविक मनुष्य और वीर पुरुष हैं, वे सब एकाग्रचित्त होते हैं। वे आरम्भमें एकही लक्ष्य—एक ही उद्देश्यको अपने सामने रखकर, जीवनके पथपर अग्रसर होते है और जब तक उसमें पूर्ण सफलता या कामयाबी नहीं होती, वे अविराम गतिसे उसी पथपर चले जाते हैं और उसी लक्ष्य पर अपने यत्नके हथौड़े बजाये जाते हैं। इन पुरुषोंको एकही उद्देश्यने चारों ओरसे घेर रक्खा है। इनकी गति एक ही ओर

है, इनकी प्रतिज्ञा अति दुर्जेय है, इन्हें संग्राममें ही आनन्द मिलता है। क्या पाठ्यावस्था और क्या परजीवन—सर्वत्र एक न एक लक्ष्यकी बड़ी ज़रूरत है। लोहा जब गरम होता है, तभी उस पर चोट लगायी जाती है, ठण्डे लोहे पर हथौड़ा पड़नेसे क्या कभी वह बढ़ सकता है? वैसा करना तो खाली समय और परिश्रमको व्यर्थ करना है।

(८)

उद्देश्यके साथ खेल मत करो।

(९)

डिकेन्स कहते हैं,—"जो गुण पढ़ने या काम करनेके समय हमारे उपयोगमें आते हैं, वे मनःसंयोगके अभ्यास-मात्र हैं। यदि हम तुच्छ या साधारण व्यापारों पर नित्य-प्रति एक अद्भुत निष्ठाके साथ मन-संयोग न करते, तो हमारी समस्त कल्पनाएँ या आविष्कार व्यर्थ होजाते। अतः प्रत्येक आदमीको चाहिये, कि जिस काम पर वह पूर्णतः अपने मनका संयोग न कर सके, उस काममें कभी हाथ न डाले।

पढ़ने, लिखने, सांसारिक कार्य्य और खेलादि—प्रायः सभी कामोंमें ध्यान देने या मन लगाने की आवश्यकता है।

(१०)

चार्ल्स का कथन है,—"मै जिस किसी भी काममें हाथ दे देता हूँ, उसीमें निमग्न हो जाताहूँ। काम करते समय, संसारमें मेरा किसी वस्तुसे सम्बन्ध नहीं रहता। वास्तवमें यही

साफल्य का मन्त्र है। किन्तु बहुतसे ऐसे आदमी हैं, जो काममें जिस रूपसे निमग्न रहते हैं, आमोद-प्रमोदमें उस रूपसे नहीं रहते।

(११)

संसारकी समस्त बातोंको जाननेकी इच्छासे, अपनी शक्तिके एक-एक काममें एक-एक खण्ड मत करो। जो लोग ऐसा करते हैं, वे अपने उद्देश्यमें कभी सफल नहीं होते। इतनाही नहीं; ऐसे लोग सर्वसाधारणसे सम्मान प्राप्त कर लेने पर भी, बदलेमें संसारको कुछ नहीं दे सकते।

(१२)

मिस्टर लिटनसे प्रायः बहुतसे आदमी पूछा करते थे, कि उन्होंने इतनी अधिक पुस्तकें किस समय लिख डालीं? उन्होंने इतना अवकाश किस तरह प्राप्त किया? उन सबके उत्तरमें मि० लिटन कहते,—"मैंने इतनी अधिक पुस्तकें कुछही समयमें लिखकर कोई आश्चर्यजनक काम नहीं किया। कारण; मेरा स्वभाव है, कि मैं एकही समयमें अनेक काम नहीं करता।

अच्छा काम करते समय, कार्य्यकी अधिकता की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। काम कम हो, पर अच्छा हो। फिर आज अधिक काम करनेसे, थकावटके कारण, कल किसी प्रकार भी—और एक काम न हो सकेगा। मैंने कालेज त्यागपूर्वक संसार-क्षेत्रमें आकर, रीत्यानुसार

अध्ययन करना आरम्भ कर दिया था। फलतः, मेरे जिन सह-पाठियोंने अभी तक कालेज-अध्ययन नहीं छोड़ा है, मैं उनकी अपेक्षा कुछ कम ज्ञान नहीं रखता हूँ। इसके अलावा मुझे बहुत कुछ घूमना और देखना पड़ा, देशके राष्ट्रमें योग दिया, जीवन के सैकड़ों कामोंमें प्रायः नित्य ही व्यस्त रहा, तथापि मैंने अब तक साठ पुस्तकें लिखी हैं। उनमें भी किसी-किसी पुस्तक को लिखनेके लिये मुझे बहुतसी खोजें और यथेष्ठ अवलोकन करना पडा है। पढ़ने और लिखनेमें, दिनमें तीन घण्टेसे अधिक समय मैंने कभी खर्च नहीं किया,—और फिर पार्लिमेण्टके अधिवेशनोंके समय मुझे उतना अवकाश नहीं मिल सका। पर इन तीन घण्टोंके समयमें, कार्य्य करते हुए मैंने मनको सदा अपने क़ाबूमें रक्खा, कभी किञ्चिन्मात्र भी चित्त-विक्षेप नहीं किया।"

(१२)

मि० कोलरिज एक अद्भुत मानसिक शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति थे, किन्तु उनके उद्देश्य कभी स्थिर नहीं रहे। उनका मन सदैव अनेक लोकों की सैर किया करता था, फलतः उनकी तत्परता-शक्ति और बहुतसे कामोंको देखते, उनका जीवन भी शोचनीय रूपसे व्यर्थ हुआ। वे मानों स्वप्नमें ही उत्पन्न हुए और स्वप्न देखते-देखते ही उनके जीवन-अङ्क पर पर्दा पड़ गया। वे सर्वदा ही अपने मनमें कल्पनाके घोड़े दौड़ाया करते थे, किन्तु मरनेके दिन तक उनकी कल्पनाएँ कार्य्यमें

परिणत न हो सकीं। यदि कोई आदमी यह बात कहे कि, उन्होंने कभी किसी कामको करनाही न विचारा होगा; नहीं; यह बात नहीं है। आरम्भ उन्होंने बहुतसे कामोंका किया, किन्तु समाप्ति उनसे एक कामकी भी न हो सकी। आपकी मृत्युके समय चार्लस लैम्बने लिखा था,—"कोलरिज की मृत्यु क्या होगयी, मानो यूरोपसे अध्यात्म-शास्त्रका लोप होगया। सुनते हैं, कोलरिज महाशयने मनोविज्ञान और अध्यात्म-विद्याके सम्बन्ध में प्राय: चालीस हज़ारसे भी अधिक लेख लिखे थे; पर दुःख है कि, वे सबके सब असम्पूर्ण हैं।"

(१४)

जिन महापुरुषोंने अपनी समस्त शक्तिको किसी एकही विषयमें नियुक्त किया, वे अति शीघ्र उस काममें सार्थकता पाते हुए लोकमान्यके नामसे प्रपूजित हुए।

मि० ह्यूगो एक वस्तुको हमेशा उतनी देरतक देखा करते थे, कि जितनी देरमें उस वस्तुका प्रतिबिम्ब उनके मानस-पट पर जम नहीं जाता था। इसके बाद, यदि इच्छा होती, तो वे अनायास और बहुतही शीघ्र उसका चित्र उतार लिया करते थे। उनका देखना हमेशा इसी भावको लिये हुए होता था, मानो दुनियाकी प्रत्येक वस्तु इसी बार उनके दृष्टि-पथमें आकर फिर उन्हें कभी नहीं दीखेगी। यही कारण है, कि उनके बनाये चित्रोंमें दर्शनीय वस्तुके तनिक-तनिक करके समस्त अङ्ग आ जाया करते थे। यदि कोई कहे,

कि उनकी शिक्षा ख़ूब बढ़ी-चढ़ी होगी,सो बात भी नहीं है। इस विषयमें उन्होंने अत्यन्त साधारण शिक्षा प्राप्त की थी ; परन्तु अपनी उस शिक्षाके अभावको उन्होंने अपनी पर्य्यवेक्षण-शक्तिके द्वारा पूर्ण कर लिया था। असलमें, एकाग्र आराधना इसीको कहते हैं।

(१५)

जिन लोगोंने जेलखानेमें रहकर पुस्तक-रचना की है, वे एकाग्र-निरीक्षण का मूल्य बहुत अच्छी तरहसे जानते हैं। उस समय, यदि कोई क़ैदी अथवा एक सामान्यसा चपरासी भी उनकी कोठरीके दर्वाज़ेके सामनेसे होकर निकलता है, तो वे ऐसी साधारणसी घटनाको भी ऐसी दृष्टिसे देखते हैं, मानो वे वैसी अभूत-पूर्व बातको आगे या भविष्य में कभी न देख पावेंगे।

(१६)

न्यूयार्क शहरके भयङ्कर रास्ते ब्राडवेमें, दिन-रात एक बड़ा भारी मेलासा लगा रहता है। रास्तेकी दोनों ओर क्रमशः खड़े हुए लोग बैण्ड बजाया करते हैं। ऐसी अवस्थामें 'होरेसग्रीली', ऐस्टर हाउसके ऊँचे चबूतरेपर बैठकर,मोड़ी हुई टोपी पर काग़ज़ रखकर, 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' नामके पत्रके लिये, सार-गर्भ सम्पादकीय लेख तैयार किया करते थे।

किसी उग्र लेख पर नाराज़ हो, एक सभ्य व्यक्तिने ट्रिब्यून आफ़िसमें जाकर सम्पादककी खोज की। थोड़ी देर बाद

उसने एक छोटेसे कमरेमें जाकर देखा, कि सम्पादक महाशय नीचा सिर किये हुए रेलकी रफ़्तारसे क़लम चला रहे हैं।

कुपित व्यक्तिने पूछा,—"क्या आपकाही नाम ग्रीली है?"

सम्पादक महाशयने ऊपरको विना मुँह उठाये ही उत्तर दिया,—"जीहां, क्या आज्ञा है?"

सभ्य व्यक्ति उस लेखका ज़िक्र करके, जो जीमें आया सो भला-बुरा कहने लगा; पर सम्पादकको उन सब बातोंसे कुछ सरोकार नहीं, वे अपने लिखनेमें निमग्न हैं। उनके लेखसे काग़ज़के ऊपर काग़ज़ ख़त्म होरहे हैं। ग्रीलीके मौखिक-भावोंमें किसी प्रकारका भी परिवर्त्तन नहीं है। आगन्तुकके कटु वाक्योंने उन्हें तनिक भी विचलित नहीं किया। अन्तमें भर-पेट गाली दे और उससे थक कर क्रुद्ध व्यक्ति वहां से ज्योंही जानेवाला था, कि इसी समय ग्रीली शीघ्रतासे कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए और उसका हाथ पकड़ कर बोले,—"बैठो भाई, इतनी जल्दी क्यों चल दिये? मन हल्का करलो। उससे तुम्हारा भला होगा। फिर; थोड़ासा समय आपके साथ बातें करनेमें लगा देनेसे, मुझे इतना अवसर मिल जायगा, कि आगेको लिखनेके लिये मज़मूनका ढाँचा बना लूँगा। इसलिये जाओ मत, बैठो।"

(१७)

डेनियल वेब्स्टरको देखकर सिडनी स्मिथको ऐसा मालूम हुआ था, कि यह कोई पतलून पहननेवाला स्टीम ऐंजिन है;

अर्थात् उसका कार्य्य-व्यापार सदा अविराम रूप से चलता रहता था।

(१८)

वास्तवमें विलियम पिटका जीवन देशोपकारके लिये था। उनकी मृत्यु तक देशोपकारके लिये हुई। उनके महद् उद्देश्यके सामने दुनियाकी कोई भी शक्ति नहीं ठहर सकती थी। उनका मन भी देशके राष्ट्रमें प्रधान बननेके सिवा अन्य किसी काममें नहीं लगता था। वे एकमात्र इसी चिन्तामें निमग्न रहा करते थे। उनका लक्ष्य जीवन-भर व्ययकी ओर नहीं रहा, तभी तो थोड़ेमें जीवन एवं एक लाखकी सालाना आमदनी होनेपर भी, मरनेके बाद उनपर लोगों का बहुत-कुछ ऋण निकला। उन्होंने अपने हृदयसे सुखभोग प्रेमको भी समूल नष्ट कर दिया था। कारण, वह उनकी उच्च आकांक्षाओंके प्रतिकूल था। मरनेके बाद, अपनी कीर्त्तिस्थापनके प्रति उनकी तनिक भी इच्छा नहीं थी, इसीसे आगेके लिये अपनी किसी वक्तृताको स्थायी करनेका उन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने अपनी समस्त सामर्थ्यको एकही रास्तेमें लगाकर, पच्चीस वर्ष पर्य्यन्त इङ्गलैण्डके राजदण्डको चालना की थी। वे बिना किसी ओर देखे, अविराम गतिसे जीवन-यात्रा करते रहनेसे, एक दिन अपने आकांक्षित स्थान पर पहुँच गये थे।

(१९)

यदि एकही विषयकी ओर जानेवाला अनुराग हमारे

चित्तको सङ्कीर्ण कर दे, अथवा हमारी विचित्र शक्तिके सामञ्जस्य-विधानके मार्गमें बाधक हो जाय, तो वह अवश्यमेव वाञ्छनीय नहीं है, किन्तु सर्वज्ञ बननेकी चेष्टामें, अपनी क्षुद्र शक्तिको सौ विभागोंमें खण्डित और विभाजित करनेकी चेष्टाओंसे भी अधिक अपकार होनेकी सम्भावना है।

(२०)

जिस समय बालक चलना सीख जाता है, उस समय यदि आप उसे किसी वस्तुके प्रति अनुरक्त कर सकें, तो वह जिस तरह भी होगा—किसी न किसी ढँगसे वहाँ पहुँचनेका प्रयत्न करेगा। और जब वही वस्तु यदि उसके आगेसे हटाकर कहीं अन्यत्र छिपादी जायगी, तो, सीधे रास्तेमें ही उसके पैर डगमगा जायेंगे और वह वहीं गिर पड़ेगा। सारांश यह कि, जीवन-यात्राका भली भाँति निर्वाह करनेके लिये, एक न एक निश्चित उद्देश्यकी अवश्य आवश्यकता है। बिना निश्चित लक्ष्यका व्यक्ति सैकड़ों हज़ारों स्थानों पर ठोकरें खायेगा।

(२१)

यूरोपमें जिस समय कोई युवक किसी आफिसमें नौकरी करने जाता है, तब उससे यह नहीं पूछा जाता, कि तुम किस स्कूल या कालेजमें पढ़े हो अथवा तुम्हारे बापका क्या नाम है, वरन् उससे यह प्रश्न किया जाता है, कि 'तुम अमुक काम को कर सकोगे?' वहाँ जो लोग बड़े-बड़े व्यवसायियों पर शासन करते हैं, उनमेंसे बहुतसे लोग उस व्यवसाय-विभागके

सबसे नीचे पदसे उठकर,क्रमशः उन्नतिके सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हुए हैं।

(२१)

महामति ग्राण्ट, सहयोगी सेना-नायकोंकी अपेक्षा अत्यधिक परिमाणमें एकाग्रता-सेवी होनेके कारणही तो, अमेरिकाके अन्तर्युद्ध तनिकसी देरमें समाप्त कर सके थे। यही गुण वाशिङ्गटनके चरित्रमें भी पूर्णतया प्रस्फुटित था। तीक्ष्ण और यथार्थ निरीक्षण चित्त-संयम-शक्तिके प्राप्त करनेका एक उपाय है। डारविनके अद्भुत फलका यही प्रधान कारण है।

साधारणतः,हमारा मन जिस वस्तुकी आकांक्षा करता है, वह हमारी बुद्धि और शक्तिके लिये अप्राप्य नहीं है। धन, विद्या या साफल्यके जो स्रोत हैं, वे समुद्रके ज्वार-भाटेकी भाँति ही नियन्त्रित और निश्चित हैं। उनमें चलन-शक्ति नहीं है। हम सब प्रकारकी सफलताओंके इतिहासमें एकमात्र यही बात पाते हैं, कि बुद्धि-वृत्ति और समस्त मानसिक तथा शारीरिक शक्ति एकही अविचलित उद्देश्य पर स्थापित हैं। समस्त बाधा और विपत्तियोंके होनेपर भी, एक अविचलित धैर्य्य सबोंसे बचा सकता है। लोभ, हताशा और व्यर्थताको जीतने वाला एकमात्र असीम साहस ही है।

(२२)

मनुष्य और उसके काम—इन दोनों विषयोंमें कितना भेद है। मनुष्य-सामर्थ्यकी समस्त किरणें एक वस्तुके ऊपर रोक

सकने और न रोक सकनेके ऊपरही, इस प्रभेदकी उत्पत्ति निर्भर है। अनेक विषयोंमें अभिज्ञता रखनेवाले व्यक्तिका ज्ञान प्रायः तैराक हो जाता है ; अर्थात् उसमें विषयके भीतर तैरनेकी शक्ति नहीं रहती।

(२४)

यथार्थ आर्टका स्वरूप उद्देश्यकी स्थिरता है। जो चित्रकार चित्रपट पर चित्रगत अनेक भावोंको प्रस्फुटित करनेकी चेष्टा करता है, जो समस्त मूर्त्तियोंको ही प्राधान्य देता है, वह असली या माननीय चित्रकार नहीं है। असली चित्रकार वही है, जो बहुत विचित्रताओंमें सब मूर्त्तियोंकी अपेक्षा एक ही मूर्त्ति को प्राधान्य दे; जो प्रधान भावको चित्रकी अन्तरस्थित मूर्त्ति में पूर्णतया परिव्यक्त कर दे। अन्यान्य मूर्त्तियाँ और छाया-सुषमादि—सभी उस मूर्त्ति में प्रतिफलित हो सार्थक होती हैं। सुनियन्त्रित जीवनशील मनुष्य अनेक विषयों में चाहे जितना अभिज्ञ क्यों न हो, उसकी शिक्षा चाहे जितनी उदार क्यों न हो, उसका एक न एक प्रधान उद्देश्य अवश्य ऐसे स्थान पर होता है, जहाँ पर अन्य क्षुद्र शक्तियाँ टकरा कर और एकत्रित होकर; पूर्ण विकाश प्राप्त करती हैं।

(२५)

प्रकृतिमें किसी भी शक्तिका अपव्यय नहीं होता। सहसा और बिना कारण कोई घटना नहीं होती। पुष्प, पत्र, वृक्ष, लता और गुल्म—यहाँ तक कि अणु परमाणु सब पर एक न

एक उद्देश्यकी छाप सुस्पष्ट है। उस स्पष्ट छापको ये सब, अविचलित अँगुलि-निर्देशसे प्रकृतिकी श्रेष्ठ सृष्टि मनुष्यको दिखाते हैं।

(२६)

लक्ष्य सदैव उन्नत होने चाहियें; किन्तु मानसिक नेत्रोंसे हम जिस लक्ष्यको बींधना चाहते हैं, दृष्टि उसी लक्ष्य पर रहनी चाहिये। जो शिल्पी असम पाषाणमें कभी देव-दर्शन नहीं करता, वह उसमें किस प्रकार देव-मूर्त्तिकी रचना कर सकेगा? एक समय एक शक्ति-द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकारके पाँच काम कभी नहीं हो सकते। जिस समय धनुष-द्वारा तीर छोड़ा जाता है, उस समय वह तीर सीधा लक्ष्यकी ओर दौड़ता है, रास्तेमें यदि और कोई लक्ष्य आजाय, तो भलेही बिंध जाय, पर तीर उस उपलक्ष्यको कभी तलाश नहीं करता। उसका मुख्य ध्येय अपने निश्चित लक्ष्यको बींधनेकी ओर होता है। चुम्बककी शलाका किसी सौन्दर्य्यको देखनेके लिये आकाशके समस्त आलोकोंके पास नहीं फिरती। सूर्य्यालोककी किरणें उसके नेत्रोंमें चकाचौंध पैदा करती हैं, उल्का-समूह उसे हाथका इशारा करके अपनी ओर बुलाता है, अगणय तारे अपने म्लान नेत्रोंकी मृदु दृष्टिसे उसके स्नेह-लाभके लिये व्याकुलता प्रकट करते हैं, किन्तु वह सदा अविचलित रहती है। जिस प्रकार उसकी एकाग्र दृष्टि प्रचण्ड धूपमें भी एकमात्र ध्रुवतारेकी ओर रहती है, उसी प्रकार मेघोंके अविराम वर्षण और मत्त आँधी

के हाहाकारमें भी उसी ओर रहती है। इसका वास्तविक कारण क्या है? कारण यह है, कि आकाशके समस्त तारे अश्रान्त गतिसे सदा-सर्वदा अपने केन्द्रोंकी परिक्रमा किया करते हैं, उन सबमें केवल ध्रुवही ऐसा है, जो सुदूर आकाशमें निःसीम पथको अतिक्रमित करता हुआ चलता है—अर्थात् जिस पथकी परिक्रमा करनेमें पच्चीस हज़ार वर्ष लगते है। यही दृष्टान्त मानव-जीवनमें घट सकता है। हमारी जीवन-यात्रामें भी एक न एक निश्चित उद्देश्य रहता है। हमें उसकी प्राप्तिमें एक दिनसे लेकर सौ वर्ष पर्य्यन्त अविराम परिश्रम करना पड़ता है। हमारा जीवन एक दिनही नहीं, एक शताब्दिमें भी स्थिर और अचञ्चल है। हमें भी चुम्बक-शलाकाकी भाँति—सत्य और कर्त्तव्यके मार्गसे भ्रष्ट करनेके लिये सैकडों रङ्गीन आलोक पुकारते रहते हैं; किन्तु ये सब अपने ऊपरी आवरणसे प्रिय-दर्शनीय हैं। इनमें पथ-निर्देश करनेकी ज़रा भी ताक़त नहीं है। यदि ऐसी परोन्नति-असहिष्णु अवगुणी शक्तियाँ हमें लक्ष्य-भ्रष्ट न किया करें, तो हमारा जीवन अनायासही सार्थक हो जाय।

तीसरा अध्याय ।

उत्साहकी जय ।

विवेक वचनावली ।

"उत्साह एक ऐसी वस्तु है, जिसके आगे बड़ी-बड़ी बलवती शक्तियाँ हार मानती हैं । उसके आगे तरह-तरहकी बाधाएँ और कार्य्यावरोधक विपत्तियाँ सदा आज्ञापालिका दासियोंकी भाँति अचल रहती हैं ।"—टालस्टाय ।

"आज मुझे यूरोपके अनेक राज्य जादूगर समझे हुए हैं । उत्साहके कारण जिन कामोंको मैंने उनकी अवधिके भीतर ही किया है, लोग उनका इतनी शीघ्रतासे कर डालना हैरतअङ्गेज समझते है । ऐसे लोगोंके हृदयोंमें—मालूम होता है, उत्साह-देव अवस्थान नहीं करते ।" —नेपोलियन ।

"जो मनुष्य किसी आदर्शकी खोजमें सदा प्रयत्न किये जाता है, उसकी शक्तिकी सीमाका पता पाना असम्भव है।"—जैनकिन ।

(१)

जो व्यक्ति किसी वस्तुकी प्राप्तिकी अभिलाषासे अथवा

किसी कामको पूर्ण करनेके लिये एक प्रण करके बैठाता है, उसमें रोग, शोक और कष्टोंको सहनेकी शक्ति सर्वापेक्षा अधिक हो जाती है। वह बदनामी, अपमान और कुत्साओंको अपना मस्तक नवाकर सहता है। सैंकड़ों अत्याचार और अगण्य बाधाएँ कभी उसका दमन नहीं करतीं।

(२)

पेरिसकी एक चित्रशालामें एक अति सुन्दर खुदी हुई मूर्त्ति है। उस मूर्त्तिकी जिस शिल्पीने कल्पना की थी, वह अति दीन-हीन, दरिद्र और एक सामान्यसी फूँसकी झोंपड़ीमें रहा करता था; अनाहार और उपवास नित्य-नैमित्यिक सहचर होनेपर भी उसके हृदयकी सौन्दर्य्य-पिपासाको नष्ट नहीं कर सके थे। हृदयमें जब कभी कोई सौन्दर्य्य उसे अपनी झलक दिखाता, उसको तत्काल मूर्त्तिमान् बना देना ही उसका पहला और तात्कालिक काम होता था। लोग इसेही उसकी साधना कहा करते थे। एक दिनका ज़िक्र है, कि वह अपने स्वभावानुसार एक मूर्त्ति को गढ़ रहा था, कि इसी समय बड़े ज़ोरसे बर्फ़ पड़ी। बड़ी मुश्किल आई। मूर्त्ति तो अभी तक एकदम कच्ची है। यदि उसपर बर्फ़ गिरेगी, तो वह किसी तरह भी साबत नहीं बचेगी। तब क्या उसकी इतने दिनोंमें तैयारकी हुई मूर्त्ति—उसकी साधना का फल—योंही नष्ट हो जायगा? जिसको वह इतने दुःख और अनेक कष्टोंका सामना करके पूर्ण कर सका वह क्या योंही व्यर्थ हो जायगी? यह सोचते ही

वह अपने घरमें जो कुछ कपड़े लत्ते थे उन्हें ओढ़, मूर्त्तिको नीचे रखकर एक कोनेमें पड़ा रहा। मारे ठण्डके हाथ पैर ऐंठने लगी, शरीरका प्रत्येक अङ्ग थर-थर थर-थर काँपने लगा; मृत्युके शीतल हाथने मानो उसे एकदम आकर पकड़ लिया। प्रातःकाल लोगोंने देखा, तो उसे मरा हुआ पाया। किन्तु अन्यान्य शिल्पियोंने उसके प्राण-पण द्वारा रक्षाकी हुई मूर्त्ति को पेरिसकी चित्रशालामें रख, शिल्पीकी कीर्त्तिको अमर कर दिया। अब यदि उसकी वह मूर्त्ति बर्फ गिरनेसे नष्ट हो जाती; उसका शिल्पी उसकी रक्षामें प्राण-दान न कर, एक दिन अपनी मौत मर जाता; तो आज वह अपने यशके शरीरसे जीवित नहीं रह सकता था।

(२)

बिना आन्तरिक अनुराग और उत्साहके संसारके सामान्य-से-सामान्य और बड़े-से-बड़े—किसी भी विषयमें सफलता प्राप्त नहीं होती। जिस प्रकार वह व्यक्ति जो देखने-भालनेमें अति कुत्सित और कुरूप है, किन्तु अपने प्रेमिक की दृष्टिमें स्वर्ग-सुषमायुक्त दीखने लगता है; उसी प्रकार हृदयमें यथेष्ठ उत्साहके होनेसे, लोग एक सूखे और नीरस विषयको भी एक नवीन फल-प्रसूतक बना देते हैं। जिस तरह किसी तरुण प्रेमिकके प्रेमके आग्रहसे अनुभव करनेकी शक्ति और देखनेकी शक्ति बढ़ जाती है—जिससे कि वह अपनी प्रेम-पात्रीमें ऐसे कितने ही गुण और कितनी ही सुन्दरताका अवलोकन करता

है, कि जो दूसरेको दीखनी सर्वथा असम्भव है, उसी तरह उत्साही पुरुषके उत्साहकी व्यग्रतासे एकदम दृष्टि दुगुनी दर्शन-शक्ति-युक्त हो जाती है; वह एक ऐसे निगूढ़तम सौन्दर्य्यका सम्वाद पाता है, कि जिसका उपभोग करते-करते वह कठोर काम, दुःख, दारिद्र्य और निर्यातन—प्राय सभीकी उपेक्षा कर सके।"

डिकेन्स कहा करते थे, कि उनकी कहानियोंके विषय और पात्र-पात्रियां जैसे ही उनके दिमागमें भर जाते थे, वे भूतकी मानिन्द उनके पीछे-पीछे घूमते थे। जबतक उन्हें काग़ज़ोंके पत्रों पर स्थान न दिया जाता अर्थात् वे लिपि-बद्ध न कर दिये जाते, उन्हें निद्रा और विश्राम करनेका भी तो अवसर मिलना कठिन था। एक-एक चित्रके चित्रण करनेमें उन्हें एक-एक मास तक केवल घर ही में बन्द होकर रहना पड़ता था, और जब कभी उस कामको समाप्त करके बाहर आते, तो ऐसे दीखते मानो किसी का ख़ून करके आये हैं। एक-एक मास अपने कामको ही लेकर व्यग्र रहना और जबतक उसकी समाप्ति न होजाय, तब तक एक घरमें बन्द रहना, यह भी उत्साह की शक्ति है।

यही हाल विक्टर ह्यूगो का था। वे जब तक अपने लेखोंको ख़तम न कर लेते थे तब तक भोजन, निद्रा और बन्धु-बान्धवोंसे साक्षात् करना हराम था। काम करते समय सम्भव है, कोई आदमी उन्हें विव्रत करे, इससे वे 'रीडिङ्ग रूम" की कुञ्जी लेकर बैठते थे।

ग्लाडस्टोन कहते हैं, कि प्रत्येक बालकको चाहिये, कि वह अपनी प्रकृतिको परिस्फुटित कर दे। क्योंकि संसारके प्रत्येक बालकके हृदयमें किसी न किसी रूपसे अनेक माङ्गलिक वीज निहत हैं। उनका अस्तित्त्व क्या चपल और क्या अचपल सबमें समानरूप से वर्त्तमान है। केवल शुभ काम करनेकी इच्छा या उत्साहके होनेकी आवश्यकता है, क्योंकि उससे वुद्धिहीनता और अकर्मण्यता—प्रायः सभी का विनाश हो जाता है।

जिस युद्धको करनेमें दूसरोंके लिये—सम्भव था—कई साल लग जाते, नेपोलियनने उत्साहके वलसे उसे केवल दो सप्ताहमें समाप्त कर दिया था। इटालीके प्रथम युद्धमें उसने पन्द्रह दिनोंमें छे लडाइयाँ जीती थीं, इक्कीस पताकाओं और पचास तोपों पर अपना दखल कर लिया था—पन्द्रह हज़ार दुश्मन क़ैद कर लिये थे। इन वातोंको देख, आष्ट्रियन लोग भयसे काँपते हुए कहा करते थे कि फ्रान्सीसी लोग किसी तरह भी मनुष्य नहीं कहे जा सकते। वे लोग उड़नेवाले देव हैं।

(४)

जिस समय अमेरिकाकी स्वाधीनताके लिये युद्ध करनेवाली सेनामेंसे वृटिश सामरिक कर्म्मचारीने विदा माँगी, उस समय अमेरिकन सेनाके जनरल मेरियनने कहा,—"नहीं, नहीं—अभी जानेकी कुछ ज़रूरत नहीं है। हमलोगोंके भोजन का समय निकट आगया है। आपको हमारे साथ भोजन करना होगा।"

यह सुन कर्मचारी यत्परोनास्ति विस्मित हुए, क्योंकि उस समय वहाँ खाने-पीनेका कुछ भी सामान मौजूद नहीं था। खाने की चीज़ें तो एक ओर रहीं—पकानेके बर्त्तनों तक का अभाव था। वैसे भी आज उन्होंने कई विस्मयावह घटनाओंके दर्शन किये थे। पहले तो जिस समय श्वेत पताका हाथमें लेकर, वे आँखो पर पट्टी बँधी अवस्थामें छावनीमें लाये गये, उस समय उन्होंने सोचा था, कि आज वे इतनी विशाल सेनाके किसी विशालकाय सेनापतिके आगे लेजाकर खड़े किये जावेंगे। सेनापतिका शरीर खूब मोटा और चेहरा रुआबदार तथा देवोंका सा होगा। पर जब आँखोंको पट्टियाँ खोलदी गयीं और जिस सेनापतिसे उनका परिचय कराया गया, वह एक बहुत ही मामूली आदमी था। उसका सारा मुँह उपवासके कष्टोंसे सूखा हुआ था—पोशाक इतनी फटी हुई थी कि,उससे समस्त शरीर ढकना नामुमकिन था। क्या यही सेनापति है! और यही सेना है! सेना भी ऐसी ही है,उसके पास न पूरा सामान और न युद्धके लायक़ सज्जा—मानो गँवारोंका दल है! अस्तु।

कर्मचारी महाशय आश्चर्य-सागरमें निमग्न थे, कि सेनापति महोदयने एक आदमीको खाना लानेके लिए कहा। आदमी आज्ञा पाकर एक टीनके थालमें भुने हुए आलू ले आया। सेनापति बोले,—"लीजिये, महाशय! भोजन कीजिये। आपको हमारा यह भोजन अच्छा तो नहीं लगेगा; पर क्या करें, इससे अच्छा खाना हमारे पास है ही नहीं।"

सभ्यता की खातिरसे, कर्म्मचारीने उनमेंसे एक आलू लेकर खाना आरम्भ कर दिया; किन्तु उसे खाकर वे बहुत देरतक चुप न रह सके। ऐसे अद्‌भुत खानेको देख, वे एकदम खिल-खिला कर हँस पड़े और बोले,—"क्षमा कीजिये महोदय! बहुत देरसे हँसी रोक रहा हूँ।"

सेनापति बोले,—"कुछ बुराईकी बात नहीं। मैं समझता हूँ, आपकी सेना इससे लाख गुनी अच्छी हालतमें रहती होगी? क्यों यही बात है न?"

कर्म्मचारी,—"निश्चय ही यही बात है। आप लोग भी सम्भवतः इससे अच्छी अवस्थामें रहते होंगे? मालूम होता है, आज सहसाही आपको इस कष्टका सामना करना पड़ा है?"

"इससे अच्छी अवस्था! अजी जनाब, इससे लाख गुनी खराब हालतमें रहते है। कभी-कभी हमलोगोंको ऐसा भोजन भी नहीं प्राप्त होता।"

"आप तो बड़े आश्चर्य की बात कह रहे हैं? क्या इस खाने-पीनेमें ही ऐसे कष्ट उठाने पड़ते है? मासिक वेतन तो खूब ज़ियादा मिलता होगा।"

"एक पैसा भी नहीं—फूटी कौड़ी भी नहीं।"

"आज आप ये कैसी बातें कह रहे हैं? तब तो देखता हूँ, बड़ी बेढब समस्या है! आप लोग फिर किस तरह ऐसे कठिन कष्ट सहन करते हैं?"

"देखिये महाशय ! सहन करना और असहन करना, सब केवल मनके ऊपर निर्भर है। मनही सब कामोंका नियन्ता है। यदि हमारे मनमें अनुराग है, तो संसारका ऐसा कोई भी कठिन काम नहीं, जिसे हम न कर सकें। यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री के प्रेममें फंस जाय, तो अपनी उस प्रियाके पानेके लिये वह लाख-लाख प्रयत्न करता है, दासत्व तक स्वीकार कर लेता है—यदि विश्वास न हो, तो इतिहास मेरी बातका गवाह है। मैं भी प्रेम-पाशसे जकड़ा हुआ हूँ,—मेरी प्रिया स्वतन्त्रता या स्वाधीनता है ; फिर बताओ मेरी अपेक्षा संसारमें दूसरा कौन व्यक्ति सुखी है ? अपने देशको स्वातन्त्र्य-मुकुट पहनानेका प्रयत्न करनेमें, यदि हमलोगोंको पेड़ोंके पत्ते और छाल भी खानेके लिये मिलें, तो भी हम जीवन-भर युद्ध करें और देशको स्वाधीन बनावें। मगर बिना स्वाधीनता प्राप्त किये, कुबेरके रत्न-भण्डारका लाभ भी हमें मृत्यु-लाभके बराबर भी सुख नहीं दे सकता। जिस देशमें हमने जन्म लिया है, जिस देशके अन्न-जलका ग्रहण कर हम पले हैं और इस समय भी हम उसी देश-भूमिमें घूम रहे हैं, हमें कोई मनुष्य अपने देशकी अयोग्य सन्तान नहीं कह सकता—बस इसी आनन्द और उल्लाससे हमारा मन हर समय भरा रहता है। यद्यपि भावी युग की मातृ-सन्तान हमारा स्मरण नहीं करेंगी, परन्तु हम उनकी स्वाधीनता के लिये—अनन्त सुखके लिये—आज सब प्रकारके कष्टोंको सुख समझ

कर युद्ध करते फिर रहे हैं—यही हमारे लिये परम सान्त्वना है।"

बृटिश कर्मचारी जब वहाँसे लौटकर आया, तो उसने कहा,—"मै एक अमेरिकन सेनापति और उसकी विपुल सेनाको देख आया हूँ। वे लोग वेतनभोगी सैनिक नहीं है, न उनके पास पहनने के लिये कपड़े हैं और न खानेके लिये अन्न। वे अपने देशको स्वाधीन करनेके लिये वृक्षोंके पत्ते खा खाकर जीवन व्यतीत करते है। कहिये, क्या ऐसे लोगोंके साथ हम लोगोंका लड़ना न्याय-सङ्गत होगा?"

(५)

उदासीनता कभी किसी सेनाको परास्त नहीं कर सकती, मृत्युहीन पाषाणमूर्त्ति का निर्माण नहीं कर सकती, स्वर्गीय सङ्गीतकी सृष्टि करना उसके लिये नितान्त असम्भव है, वह त्रिकाल में भी प्रकृति की शक्तिको अपने वशमें नहीं कर सकती। नयन-मोहन निकेतनका निर्माण करना, कविता-काव्य द्वारा किसीके चित्तको आर्द्र करना, असामान्य गुण-गरिमा से संसार को मुग्ध करना, इत्यादि असुलभ काम औदासीन्य-शक्ति की क्षमता के बाहरके काम हैं। पर उत्साह! आह! उत्साह की तो बात ही निराली है। उसके आगे संसारका कोई भी काम असामान्य नहीं। उत्साह, जिस तरह एक माँझीके दिशा-निरूपण करनेवाले सदा चञ्चल काँटे पर बैठा हुआ है, उसी तरह वह मुद्रायन्त्र के प्रकाण्ड लोहको

चलाता है। एक मात्र उत्साहने ही गेलिलिओको दृष्टिके आगे सैकड़ों अपरिचित सांसारिक चित्रों को उद्घाटित कर दिया था। उत्साहको मृत्युकी विभीषिका भी म्लान नहीं कर सकती। उत्साह ही ने कोलम्बसके जहाज़के पालमें हवा भरने का काम किया था। उत्साहनेही प्रखर कृपाणको हाथमें ले, स्वाधीनता-के लिये जितने संग्राम हुए है—सबमें योगदान किया है। जिस समय निर्भीक मनुष्योंने सभ्यता-विस्तार के लिये, जङ्गलोंके काटने का प्रयास किया, उस समय यही उत्साह उनके कुल्हाड़ोंपर अवस्थान करता था। उत्साहही अखिल विश्व के समस्त महाकवियोंकी लेखनियोंसे शत धाराओंके साथ प्रकाशित हुआ है। महान् पुरुष और उनके समस्त महत् कार्य्य एकमात्र सदुत्साह के फल हैं।

(६)

सङ्गीत-विद्याके असामान्य आचार्य्य बीथोविनकी जीवनी के लेखक एक स्थानपर लिखते हैं, कि एक बार मैं और बीथोविन शीतकालकी चाँदनी रातमें जङ्गलके एक बहुत छोटे रास्तेसे जा रहे थे, कि एकाएक किसी सामान्यसे झोंपड़े के आगे खड़े होगये और मुझे रोककर किसी अनुभूत शब्दको सुनने के लिये कहने लगे और बोले,—"मानो कोई मेराही बाजा बजा रहा है। अहा! कैसा अच्छा बजा रहा है!" बीथोविनका यह कहना था, कि बाजा थम गया और किसीने करुण कण्ठसे कहा,—"लो, अब मैं ज़ियादा नहीं

बजा सकती। अहा! यदि एक दफा कलोनिका कानसर्ट सुन सकती, तो मनकी साध पूरी हो जाती।" यह सुन किसी दूसरे व्यक्तिने कहा,—"बहन! दुःख करने की कुछ आवश्यकता नहीं। जब वह किसी प्रकार सुननेकोही नहीं मिलता, तो उसके लिये शोक करना वृथा है। हम लोग इतने ग़रीब हैं, कि मकानका किराया तक नहीं दे सकते, तब उससे बाजा सुनने की आशा पूर्ण होनी सर्वथा असम्भव है।" वह बालिका बोली,—"तुम्हारी बात बहुत ठीक है भैया! तथापि इच्छा है, कि इस जीवनमें किसी का बढ़िया बाजा सुनूँ। पर इच्छा क्या कभी पूर्ण होती है?"

"यह सुनतेही बीथोवेन मुझसे कहने लगे,—"यदि हो सके तो भीतर चलो।"

मैंने कहा,—"भीतर! भीतर चलकर क्या करोगे?" वे उत्तेजित कण्ठ से बोले,—"मैं उसे अपना बाजा सुनाऊँगा। गुणका आदर ऐसेही स्थानपर होता है। यहाँ शक्ति, प्रतिभा और हृदय सभी उपस्थित हैं।"

तदनुसार दर्वाज़ा ठेलकर भीतर गये और जाकर देखा कि, एक छोटीसी टेबिलके पास बैठा एक युवक जूता सीं रहा है और एक पुराने पियानोके पास बैठी हुई एक बालिका विषण्णतासे मुँह नीचा किये हुए है।

उन्हें देख बीथोवेनने कहा,—"आप लोग हमें क्षमा करें। आपका बाजा सुनकर यहाँ आनेका लोभ संवरण न कर सका।

मैं भी पियानो बजा लेता हूँ। आपकी बातें बाहर खड़े होकर हम लोगोंने सुनी हैं। यदि सुनना चाहें या उसके सुनने की इच्छा करें, तो मैं उसे सुनानेके लिये राज़ी हूँ।"

युवक साची धन्यवाद देता हुआ बोला—"अफसोस! मेरा बाजा इस समय बहुतही बिगड़ रहा है, स्वर भी ख़राब हो रहे हैं।"

"स्वर ख़राब हो रहे हैं! तब ये किस तरह.........? मुझे क्षमा कीजिये।"

बीथोवेन ने देखा, बालिका अन्धी है।

"आप देख नहीं सकतीं? खैर, तब आप सुनें। पर आप सुनेंगी कैसे? आप तो कनसर्ट को जानती ही नहीं।"

"मैं जब दो वर्ष ब्रूलमें रही थी, तब मेरे मकानके पास एक महिला रहती थीं। वे कानसर्ट बजाती थीं, और मैं एक मनसे उसे सुना करती थी। गर्मियों के दिनोंमें प्रायः ही उनके मकानकी खिड़कियाँ खुली रहती थीं; बाजा बजते समय मैं मैदानमें खड़ी होकर उसे खूब सुनती थी।"

यह सुन बीथोवेन पियानोके पास जा बैठे। लड़की अपने भाई के पास जा बैठी। बीथोवेनने उस समय उस टूटे बाजे को बजानेमें जैसी निपुणता का परिचय दिया, आह! कुछ कह नहीं सकता। ऐसा बढ़िया बाजा मैंने कभी नहीं सुना। सरस्वतीकी वीणा उसके आगे हेच थी। इधर भाई बहन उसे तन्मय होकर सुनने लगे। बाजेके प्रत्येक स्वर और

उसकी प्रत्येक ताल पर वनकी हवा मस्त हो गयी। कमरेमें जलते प्रकाशपर भी मानो मोहिनी-शक्ति का अधिकार होगया। बीथोवेनके बाजेको सुन हम सबकी आँखें मुँदने लगीं, प्रकाश एकदम 'दप् दप्' करने लगा, अनन्तर म्लान हुआ और एक दम बुझ गया। यह बात मानों हम लोगोंने स्वप्नमें देखी। प्रकाश के बुझते ही बीथोवेनने दूसरे हाथ से पासकी दीवार में लगी खिड़की खोल दी, चन्द्रमाकी चाँदनी भी बाजा सुनने के लिये खिड़कीके दर्वाज़े पर खड़ी थी, जो किवाड़ खुलते ही भीतर घुस आई। चन्द्रमा के प्रकाशसे घर भर गया। पर न मालूम क्या सोचकर, बीथोवेनने बाजा बजाना बन्द कर दिया।

मोची बोला,—"अद्‌भुत व्यक्ति हैं! आप कौन हैं? आप क्या करते हैं?"

युवकके उक्त प्रश्नका कुछ उत्तर न देकर, उन्होंने केवल 'सुनो' कहकर, पहले उस अन्धी लड़कीने जो गत बजायी थी, उसीके जोड़की तत्काल एक गत रचकर सुना दी। अब तो उनके बारेमें अधिक पूछताछ करनेकी, मोची और उसकी बहन को कुछ भी आवश्यकता न रही। वे एक साथ आवेग-पूर्ण कण्ठसे बोल उठे—"तब तो आपही बीथोवेन हैं!"

बीथोवेन पियानो परसे उठनाही चाहते थे, कि भाई-बहन एक साथ बोल उठे—"कृपाकर, एक बार और सुना दीजिये"

निर्मेघ शीतकालके आकाशमें, तारागणोंने स्निग्ध प्रकाश-वाले दीपक बाल रक्खे थे। बीथोवेन चिन्तान्वित भावसे उनकी ओर देखते हुए बोले,—"मैं अभी ज्योत्सना के गुण-विशिष्ट स्वरोंकी रचना करता हूँ।" अनन्तर वे करुण स्वर बजाने लगे। आह! वे स्वर हृदयको कैसी अनिर्वचनीय शान्ति देते थे। जिस प्रकार ज्योत्सना निःशब्द चरणोंसे धरणीपर अवतरण करती है, उसी प्रकार वे स्वर भी धीरे-धीरे यन्त्र पर पदक्षेप करते थे। अनन्तर वे स्वर क्रमशः ऐसे उद्दाम हो उठे, मानो तृण-भूमिपर परियाँ या स्वर्ग की अप्सरायें नृत्य कर रही हों। सुरोंका आखीर मानों शीघ्रतासे उद्वेग-पूर्ण होकर, अथवा किसी अज्ञात भयसे भीत हो भागा जाता है। बाजे के रुकते ही हम सब अवाक्की भांति हो गये। मानो स्वरोंकी समाप्ति हमें गेरती धकेलती निकल भागी हो।"

बीथोवेन दर्वाज़ेके पास आकर बोले,—'अब विदा चाहता हूँ।"

भाई बहन समान स्वरसे बोले:—"फिर कभी दर्शन दीजियेगा?"

बीथोवेन शीघ्रता-पूर्वक बोले:—"हाँहाँ, फिर आऊँगा। इस लड़कीको भी बाजा सिखाऊँगा। अच्छा अब जाता हूँ।" मुझसे कहा,—"जल्दी घरको चलो, मैं इन स्वरोंको लिपिबद्ध करना चाहता हूँ, इस समय तो ये हृदय पर लिखे हुए हैं; बादको इनके विस्मृत हो जाने की सम्भावना है।"

तदनुसार हम लोग शीघ्रही घर आ पहुँचे। अगले दिन जिस समय उन्होंने उक्त स्वर सुविख्यात 'मूनलाइट सोनेटे' के नामसे लिपिबद्ध कर अपने डेस्कमें रक्खे, उस समय भी बहुत कुछ रात थी।"

बीथोवेनको इस प्रकार की सदुत्साह पूर्ण साधना ने ही उन्हें आज लोक-विख्यात किया।

(६)

गिलबर्ट वेकेट नामक एक अँगरेज़ क्रुसेड या धर्म-युद्धमें कैद होकर, एक मुसल्मानका दास होगया था। क्रमशः वह प्रभु का विश्वास और प्रभु की कन्या का प्रेम पाकर भी, एक दिन सुयोग देख स्वदेशको भाग गया। कन्या ने भी अपने प्रेमिकको खोजमें निकल भागने का सङ्कल्प किया। उस सैनिकके साथ इतने काल तक सहवास होने से उसने दो बातें सीख ली थीं, एक "लण्डन" और दूसरी "गिलबर्ट"। पहली बातको सहायता से तो वह जहाज़ द्वारा लण्डन पहुँच गयी। इसके बाद वह शहरके प्रत्येक रास्ते और सड़कों पर, दूसरी बातको जाप-मन्त्रकी भाँति उच्चारण करती हुई घूमने लगी। अन्तमें एक दिन वह सचमुच उसी रास्ते पर पहुँच गयी, जिसपर कि उसके प्रेमिक गिलबर्टका मकान था। उस बालिकाके पीछे उस समय बहुतसे आदमियों की भीड़ एकत्रित हो गयी थी। वे लोग उस रूपसी विदेशिनी बालिका के कार्य्य-कलापों को देखकर अवाक् थे। गिलबर्ट एक बालिकाके पीछे इतनी

भीड़ देख, कौतूहलवश होकर, मकानके बाहरकी खिड़कीमें जा खड़ा हुआ। जब देखा कि वह बालिका उसकी परिचिता प्रेयसी है, तब शीघ्रतासे बाहर जा, उसे हृदयसे चिपटा कर अपने घर ले आया।

यह दूरत्वकी बाधा प्रेमिकाके उत्साहके सामने पराजित हुई।

(७)

उत्साहके बलसेही, पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें, विक्टर ह्यूगोने एक वियोगान्त नाटककी रचना की थी। केवल सैंतीस वर्षके जीवनमें रैफल और बैरन जगत्में अक्षय कीर्त्ति स्थापन कर गये थे। ऐलेकज़ैण्डरने, तरुण अवस्थामें ही, एशियाकी विपुल सेनाको परास्त किया था।

यदि हृदयमें उत्साह हो, तो केशोंके सफेद और वृद्धावस्थाके समस्त लक्षण प्रकट हो जाने पर भी, अन्तरका तारुण्य सदा पुरुषको एक सर्वोत्तम वीर बनाये रहता है। उसका यौवन सदा-सर्वदा उर्वशी की भाँति उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है और निःसीम हो जाता है।

उत्साहके गुण अनन्त हैं। कवि 'अशङ्क' के शब्दोंमें, एक मात्र उत्साह-शीलतासे मनुष्यको ईश-दर्शनभी कुछ कठिन नहीं। उदाहरण स्वरूप-पौराणिक ध्रुव की कथा देखने-लायक है।

चौथा अध्याय।

समयका सद् व्यवहार।

विवेक वचनावली।

"क्या आप जीवन को प्यार करते हैं? यदि करते हैं, तो समय का अपव्यय क्यों करते हैं? क्या आप नहीं जानते, कि उसीके द्वारा आपके जीवन का गठन होता है?" —फ्रङ्कलिन।

"अल्पायु व्यक्ति भी प्रति घण्टेके हिसाबसे बड़ा हो सकता है। किस तरह हो सकता है?—जबकि वह अपने अमूल्य समयको कभी नष्ट न करे।" —बेकन।

जीवनमें प्रत्येक घण्टा सैकड़ों कर्म्मोंकी सम्भावनी आशासे स्पन्दमान है। उसका एक मुहूर्त्त व्यतीत हो जानेपर, उस क्षणका निरूपित कार्य्य फिर कभी नहीं हो सकता। जिस प्रकार ठण्डे लोहे पर हथौड़ा बजानेसे कुछ फल नहीं होता, उसी प्रकार जिस कार्य्यका जो समय निर्दिष्ट है, उस समयके व्यर्थ बीत जानेपर यदि उस कार्य्यको करना चाहो, तो वह पहले की भाँति साङ्गोपाङ्ग नहीं होता।"

—रस्किन।

'हां, बड़ा अनर्थ हुआ ? सूर्य्योदय और सूर्य्यास्तके मध्यवर्त्ती दो घण्टे का समय स्वर्णमय था। उन दो घण्टोंमेंसे प्रत्येक घण्टेके साठ मणिमय मिनिट थे। वे मेरी असावधानीके कारण व्यर्थ बीत गये, मुझे उनका इतना क्षोभ हुआ, कि जितना कोहेनूरके खो जानेसे सम्राट्को। सम्राट्ने तो अपने कोहेनूरको पुरस्कारकी घोषणा कराकर पुनः प्राप्त कर लिया था, पर मैं वह भी नहीं कर सकता। कारण,—मेरा विश्वास है, कि बीता समय लाखों रुपया और असंख्यों चेष्टाएं करने पर भी नहीं लौट सकता।"

—हैरेसमैन।

"जिस समय हम शिक्षाके अत्यन्त पक्षपाती हो जावेंगे, उस समय हमें ज्ञात हो जायगा, कि समय कैसा असूल्य धन है और हम उसका व्यवहार किस प्रकार करें। यदि उस वक्त हम यों कहकर अपना पीछा छुड़ाना चाहेंगे, कि असुक कामको करनेके लिये हमारे पास समय ही न था, तो इस दलील का शिक्षित समाज घोर उपहास करेगा।

—मैथू आरनल्ड।

(१)

बेञ्जमिन फ्रेङ्कलिनके सम्वादपत्रके आफ़िसके सामने एक व्यक्ति प्रायः एक घण्टे तक घूमता रहा। अन्तमें उसने भीतर जाकर पूछा,—"फ्रेङ्कलिनको लिखी असुक पुस्तक का कितना दाम है ?"

आफ़िसका एक कर्म्मचारी बोला,—"एक डालर।"

प्रश्नकर्त्ताने कहा,—"एक डालर! इससे कम नहीं हो सकता?"

कर्म्मचारी बोला,—"जी नहीं। उसका दाम एक डालर ही है।"

प्रश्नकर्त्ता और कुछ देर आफ़िसमें रक्खी हुई अन्यान्य बिक्री की पुस्तकोंको देखता रहा। इसके बाद उसने पूछा,—"मिष्टर फ्रेङ्कलिन आफ़िसमें है?"

कर्म्मचारी बोला,—"जी है, पर इस समय एक आवश्यक कार्य्यमें फँसे हुए है।"

वह आदमी ऐसा-वैसा नहीं था। सहजहीमें टलजानेवाला नहीं था। बोला,—"मैं उनसे कुछ देरके लिये मिलना चाहता हूँ।"

थोड़ो देरके बाद फ्रेङ्कलिन आये। अपरिचित व्यक्ति ने उनसे पूछा,—"मिस्टर फ्रेङ्कलिन! अमुक पुस्तक कमसे कम कितने मूल्यमें मिल सकती है?"

फ्रेङ्कलिनने तत्काल उत्तर दिया,—"सवा डालरमें।"

'सवा डालर! यह क्या महाशय! आपका आदमी तो अभी उसका मूल्य एक डालर बता रहा था?"

फ्रेङ्कलिन बोले,—"आपका यह कहना ठीक है। यदि कामको अधूरा छोडकर न आना पड़ता, तो मैं इस पुस्तक का मूल्य एक डालर पाकर ही सन्तुष्ट हो जाता।"

आदमी आश्चर्य्यसे अवाक् होगया। अस्तु, जब बात यहाँ-

तक बढ़ गयी है, तब उसको एक न एक मीमांसा करनी ही पड़ेगी ; अतएव अपरिचित व्यक्ति फिर बोला,—"महाशय ! अब इन व्यर्थकी बातोंको छोड़िये और ठीक-ठीक बता दीजिये, कि पुस्तक कितने मूल्यमें मिल जायगी ?"

फ्रेङ्कलिनने जवाब दिया,—"डेढ़ डालरमें ।"

"डेढ़ डालर ! यह क्या महाशय ! आप मेरे साथ हँसी कर रहे हैं ? अभी तो आपहीने उसका सवा डालर माँगा था ? अब डेढ़ डालर क्यों ?"

फ्रेङ्कलिनने गम्भीरभावसे उत्तर दिया,—"उस समय पुस्तक का दाम सवा डालर ही था । ज्यों-ज्यों आप मेरा समय व्यर्थ खर्च करते जाते हैं, त्यों-त्यों उसका मूल्य आपके नाम दर्ज होता जाता है ।"

यह सुन अपरिचित व्यक्तिने और कुछ न कह, जेबसे डेढ़ डालर निकालकर फ्रेङ्कलिनके सामने मेज पर रख दिया और चुपचाप वहांसे चल दिया ; एवं समयको ज्ञान और धन सम्पादनके लिये किस प्रकार व्यतीत करना चाहिये, इसकी हाथों-हाथ शिक्षा भी लेता गया ।

(२)

समयको नष्ट करनेवाले सर्वत्र विद्यमान हैं ; पर उनको आगेके लिये तत्काल सतर्क कर देनेवालोंकी भी कहीं कमी नहीं है । एक समयका ज़िक्र है, कि फ्रान्सके प्रसिद्ध कवि और सुलेखक मिस्टर रेवेरेगड जिस समय कविता करने बैठते थे, उस

समय उनके पड़ोस का एक व्यक्ति आफ़िसके कामसे निवृत्त होकर, उनके साथ गप-शप करनेको प्रायः नित्यप्रति आजाया करता था। रेवरेण्डने पहले दिन तो उसे प्रसन्न करनेके लिये बातचीत द्वारा अपना एक घण्टा समय नष्ट कर दिया; परन्तु जब दूसरे दिन भी उसी आशासे वह उनके पास आया, तो वे उससे शेकहैण्ड करके और उसकी किसी बातके छेड़नेसे पहले ही मेज़ पर तथा उसके सामने कुछ कोरे कागज़ रखकर बोले,—"कृपाकर आप फ्रान्स-निवासी ऐसे आदर्श पुरुषोंका परिचय मेरे लिये नोट कर दीजिये, जिनके समयका एक मिनट भी व्यर्थ नहीं जाता।"

पड़ोसी, "बहुत अच्छा" कहकर अपने काममें लग गया और रेवरेण्ड कविता लिखनेमें दत्तचित्त होगये।

दो घण्टे बाद उपर्युक्त व्यक्ति मि० रेवरेण्डको अभिलषित पुरुष-पुङ्गवों का संक्षिप्त परिचय लिखकर ले आया, तबतक रेवरेण्ड भी फुलिसकेप साइज़के दो पृष्ठों पर 'समय का सद्-व्यवहार' शीर्षक कविता लिख चुके थे। उस व्यक्तिके हाथसे कागज़ ले, अपनी कविताको उन्होंने मेज़ पर इस ढँगसे डाल दिया, कि जिससे वह व्यक्ति उसे अनायास पढ़ सके।

हुआ भी ऐसाही। वह व्यक्ति कविताके शीर्षकको देख, उत्कण्ठ-मना हो, ध्यानपूर्वक कविताका पारायण कर गया। पारायण करते ही उसके दोनों नेत्र नीचे हो गये और उसके मुख पर ग्लानिकी रेखाएँ स्पष्टरूपसे दीख पड़ने लगीं।

कारण, कि उस कवितामें—समयका अपव्यय करनेवाले व्यक्तियोंके वर्णनमें, सबसे पहले उक्त व्यक्तिके गत दिवसके आचरणका ही उल्लेख था।

(३)

जो लोग छोटे-छोटे मिनिट्, पाव घण्टे और आध घण्टेके समय, अप्रत्याशित छुट्टी वा असमय-निष्ठ आगन्तुकके लिये अपेक्षा करनेके समयमें भी बड़े-बड़े कामोंको सिद्ध कर डालते हैं, और एक पल भी व्यर्थ नहीं जाने देते, वे अन्तमें जैसी सार्थकता का लाभ करते हैं, उसे देखकर वास्तवमें सर्वसाधारणको बड़ा आश्चर्य्य होता है।

(४)

ऐलिहुबैरिट कहा करते थे, कि मैंने जो कुछ किया या करने की आशा करता हूँ, वह सब हुआ और होगा। इसका एक कारण है। वह यह कि,—"मेरे पास दीर्घनिष्ठा-पूर्ण समयकी कमी नहीं है। मैंने मिनिटके प्रत्येक सेकण्डमें काफ़ी चिन्ताएँ की हैं; तथ्यके ऊपर तथ्य स्थापित किये हैं, अतएव मेरे समस्त मनोरथ अव्यर्थ होते है। इसके सिवा मेरी सर्वोच्च आकांक्षा और श्रेष्ठ आराधना हुई है,—अपने स्वदेशी युवक-दलके सामने समयके अमूल्य खण्डांशों या पलोंका सद्व्यवहार किस तरह करना चाहिये—इसका दृष्टान्त उपस्थित करना।"

(५)

पार्लिमेण्टमें मिस्टर बर्कको वक्तृता सुनकर, उनके एक

बन्धुने बहुत कुछ सोच-विचार करनेके बाद कहा,—"आश्चर्य ! मेरे मकानमें रहकरही मिस्टर बर्कने इतना ज्ञान सम्पादन कर लिया और मुझे उनकी उस एकान्त आराधनाका पता तक भी नहीं ! किन्तु इतना मैं अवश्य जानता हूँ, कि उन्होंने आज तक कभी अपने समय को नष्ट नहीं किया।"

(६)

दिवस, अदृश्य हाथोंमें अमूल्य उपहार लेकर, छद्मवेशमें बन्धुकी भाँति हमारे पास आता है। यदि हम उसकी अभ्यर्थना न करेंगे, तो वह हमसे ऐसा रूठ जायगा, कि फिर हम कभी उसका मुँह ही न देख सकेंगे।

दिनका प्रत्येक प्रभात नव-नव उपहारकी डाली लेकर हमारे निकट उपस्थित होता है, किन्तु यदि हम गत कलकी भाँति आज भी उन उपहारोंका प्रत्याख्यान करदें, तो आजके दिनमें होनेवाले लाभसे हम वञ्चित रह जायँ। जैसे ; दिनके बाद दिन अतीतके गर्भमें लीन होते चले जाते हैं। धनके नष्ट हो जाने पर धन फिर भी व्यय-संक्षेप और उद्यमके द्वारा पुनःप्राप्त हो सकता है , नष्ट ज्ञान स्वाध्याय द्वारा पुनःप्राप्त कर लिया जा सकता है; नष्ट स्वास्थ्य औषधि-सेवन और मिताचारके द्वारा पुनः लब्ध किया जा सकता है; किन्तु समयके एकबार चले जानेपर, वह नहीं लौट सकता—चिरकालके लिये अदृश्य हो जाता है।

(७)

प्रायः लोगोंके मुँहसे सुना जाता है, कि भोजन करनेके

लिये अब तो केवल दो तीन मिनिट ही बाकी है, अब हाथका काम छोड़ देना चाहिये।" पर वे यह नहीं समझते, कि नित्य प्रति इस प्रकारके खण्डमुहूर्त्तोंको अवहेलासे छोड़ देने पर, एक मास या एक सालमें उनका योग कितना बैठेगा। याद रखना चाहिये, इन मुहूर्त्तोंका सद्व्यवहार करके कितने ही दरिद्र व्यक्ति, संसारमें, अक्षय कीर्त्ति और अपूर्व ख्याति छोड़ गये हैं।

जो समय हम अनायास ही नष्ट कर देते हैं, यूरोपके अधिकांश विद्वानोंकी भाँति यदि वह किसी काममें ख़र्च किया जाय, तो हम दूसरोंके मुँहसे अपने तईं व्यर्थ-जीवी न कहला सकें।

(८)

ऐण्डोवरके 'स्टूडेण्ट होस्टल' के लड़के जब प्रातःकालीन भोजनका पूर्ववर्त्ती समय परस्परकी हँसी-दिल्लगीमें बिता दिया करते थे, तब जोज़फ घरके एक कोनेमें प्रकाण्ड अभिधानों—बड़े-बड़े कोशोंको खोलकर, उनसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति और उनका अर्थ याद किया करता था। भोजनमें आध मनिटकी देर होने पर भी वह उसको व्यर्थ नहीं खोता था। यह देखकर बहुतसे लड़के उसकी हँसी किया करते और कहते कि—जोज़फ खाना नहीं खाता, वरन् 'कोश' खाता है। अब देखते है, उसी साधनाके बलसे वह उस युगका प्रधान अभिधान-प्रणेता माना जाता है।

(९)

श्रीमती हेरियन हेरलैण्डके बच्चे, जब ज़रासी भी देरके लिये सोने या खेलने लगते, तब वे तत्काल कुछ न कुछ लिखने लगती थीं। साल भर बाद देखा गया, तो उन्होंने अपने बच्चोंके सोनेके समयमें ही चार-चार सौ पृष्ठोंके सात उपन्यास लिख डाले। कहते है,—उनका जीवनकाल सदैव अनेक विघ्न-बाधाओंसे पूर्ण रहता था; तथापि मरनेके समय तक वे, प्रति सप्ताह, सम्बादपत्रोंको अपने प्रबन्ध तैयार करके देती रहीं। इसीसे कहना पड़ता हैं, कि उन्होंने साधारणको असाधारणत्वसे मण्डित किया था।

(१०)

जितने समयमें लोग, चाय और काफ़ी तैयार करते व पीते है, उतने समयकी बचत करके प्रसिद्ध पाश्चात्य कवि लौंगफेलोने 'इनफारनो' का अनुवाद किया था। मिस्टर ह्यू मिलर पत्थरोंके काम अर्थात् पाषाण-प्रतिमादि बनानेवाले मिस्त्री होनेपर भी, थोड़ा समय ज्यों-त्यों निकाल कर, वैज्ञानिक पुस्तकों का अध्ययन किया करते थे।

फ्रान्सको लेडी-प्रेसीडेण्टकी सङ्गिनी मिस डेजोलिसने, कुमारीके साथ सायङ्कालीन भ्रमण करनेके समयमें ही अनेक चमत्कारक पुस्तकोंकी रचना की थी।

'पैरेडाइस लॉस्ट'के कवि मिल्टन,अपने कर्म्म जीवनमें व्यस्त रहने पर भी, दोचार मिनिटका समय पा लेने पर ही कविता-

रचना किया करते थे। 'बार्नस'ने भी बहुतसी कविताएँ इसी प्रकारके सञ्चित समयमें ही लिखी थीं।

'हैरियट बीचरस्टो'ने सांसारिक अनेक आवश्यकीय कार्य्योंकी झंझटोंमें ही अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "टाम काकाकी कुटिया' की रचना की थी।

जोन स्टुअर्टमिलके अधिकांश श्रेष्ठ निबन्ध ईस्ट इण्डिया-कम्पनीके-क्लार्क जीवनमें ही लिखे गये थे।

प्रसिद्ध पण्डित 'गैलिल्यू' अस्त्र-चिकित्सकका काम किया करते थे, किन्तु उनके अवकाशके सद्व्यवहारसे संसारने कितने ही महान् आविष्कारोंका लाभ उठाया था।

इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मिस्टर ग्लैडस्टोनका राज-नीतिक ज्ञान केवल रास्तेमें पुस्तकोंके अध्ययनसे ही बढ़ा; पर हमारे यहाँके किसी युवकको इस प्रकारसे समयका सद्व्यवहार करते देख लोग—वे भी अपठित या मूर्ख नहीं—पठित होनेका अभिमान रखनेवाले—उसको यह कहकर हँसी किया करते हैं, कि "अमुक व्यक्ति अपने वक्तको घिस-घिसकर वसूल किया करता है।"

महाकवि दाँतेके समयमें प्रायः प्रत्येक साहित्यिक, चिकित्सक या वस्त्र-व्यवसायी बज़ाज़ और राष्ट्र-नीति-वेत्ता विचारक व सैनिकोंका काम करते थे। उन्हें अपने सब काम 'समय-विभाग' बाँधकर करने पड़ते थे।

माइकेल फैरेडे किसी आफ़िसमें दफ़्तरीका काम करते थे

और अवसर पाकर वैज्ञानिक परीक्षा देते थे। एक समय उन्होंने अपने किसी मित्रको लिखा,—"मुझे और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है समय की। यदि समय मिले, तो मैं कुछही दिनोंमें पार्लिमेण्टका मेम्बर होजाऊँ।"

अलेकज़ेण्डर फोन होमवल्ड्स, दिनके समय, अन्यान्य सांसारिक कार्य्योंमें इतने व्यस्त रहते थे, कि उन्हें अपनी वैज्ञानिक गवेषणा रात्रि या अति प्रातःकालमें करनी पड़ती थी—अर्थात् उस समय जब कि अन्य लोग सुख-निद्रामें निमग्न रहते हैं।

(११)

प्रतिदिन एक घण्टा समय बचा, उसका सद्व्यवहार करनेसे, एक अति साधारण आदमी भी, किसी उच्च विषयको पूर्णतः आयत्त कर सकता है। नित्य एक घण्टा समयके विद्याध्ययनसे, मूर्ख और अशिक्षित, दश वर्षमें, किसी भी भाषा का अच्छा विद्वान् हो सकता है। दिनके एक घण्टेमें एक लड़का या एक शिक्षार्थी यदि अपनी पुस्तकके बीस सफे मनोयोग-पूर्वक पढ़ सकता है, तो साल-भरमें सात हज़ार सफ़े या अठारह बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़कर समाप्त कर सकता है। प्रतिदिन एक-एक घण्टेके सद्व्यवहारसे मनुष्य "फ़ाक़ाकशी" से निजात पा सकता है। दिनके इस एक घण्टेने कितने ही नवीन व्यक्तियोंको समाजका एक अति हितकारी कर्मी बना दिया है। दिनके बारह घण्टोंमेंसे लगभग ३॥ घण्टा समय हम

योंही टालमटोलमें नष्ट कर देते हैं। ऊपर लिखी बातोंपर ध्यान देते हुए, यदि हम भी अपने व्यर्थ जानेवाले उक्त समयका सद्व्यवहार करने लगें, तो कितनेही ऐसे गुरुतर काम, जो मनुष्यको महद् व्यक्ति बनानेवाले है, हस्तामलकवत करतलगत हो जायँ।

(१२)

प्रत्येक नवयुवकके हृदयमें एक ऐसी आकर्षण-शक्तिके होने की आवश्यकता है, कि जिसकी प्रेरणासे वह अपने मनको बिना किसी प्रकारकी अड़चनके अभिलषित कार्य्योंमें प्रयुक्तकर सके। यदि उस नवयुवकके उपर्युक्त कार्य्य, प्रतिदिनके अर्थोत्पादक कार्य्योंके समजातीय भी न हों, तोभी उनके सम्पादन करनेमें कुछ हानि नहीं; पर सबसे अधिक आवश्यकता उसके मनमें कार्य्यमें मन लगानेवाली शक्तिके होनेकी है।

बहुतसे साधारण व्यक्ति जिन लिखे और छपे हुए काग़ज़ोंको बड़ी बेपरवाहीके साथ फाड़कर फेंक देते हैं, उनका संग्रह कर बहुतसे आदमी कभी-कभी बड़े लाभवान् होजाते हैं एवं जो मितव्ययिता बहुतसे आदमियोंके सामने नितान्त तुच्छ हैं, बाज़-बाज़ आदमी उसी का आश्रय ग्रहण करके एक दिन विपुल सम्पत्तिके अधिकारी होजाते है। यही गुण समयसञ्चय और उसके सद्व्यवहारमें है। संसारमें ऐसा कौन आदमी है, जो इच्छा करनेपर भी दिन-भरमें एक घण्टा समय नहीं बचा सकता? बेर मौण्टके विख्यात मोची चार्ल्स फ्रास्टने एक

समय प्रतिज्ञा की थी, कि मै नित्य एक घण्टा पढ़ने-लिखनेमें खर्च किया करूँगा। तदनुसार प्रतिज्ञाको कार्य्यमें परिणत कर, वे एक दिन अमेरिकाके विख्यात गणितज्ञोंमेंसे होगये। इतनाही नहीं; उन्होंने अन्यान्य विषयोंमें भी ज्ञान प्राप्त कर यशोपार्ज्जन किया था। जोन हण्टर, नेपोलियनकी भाँति, रातको केवल चार घण्टे सोया करते थे। वे दिन-रातके समस्त समयको अपने नैमित्यिक-कार्यों में ही व्यय किया करते थे। पर जिस समय वे मरे, उस समय उनके संग्रह किये तुलना-मूलक चौबीस हज़ारसे ज़ियादा नमूने निकले कि, जिनकी श्रेणियोंका विभाग करनेमें ही प्रोफेसर वेन को दश वर्ष खर्च करने पड़े। अतः यह निश्चित है कि, समयके पूजक निर्बल व्यक्ति सबलोंके मान्य बन जाते है।

(१२)

मिष्टर बेक्सटरके पास एक बार कई एक आगन्तुक आये। उन्होंने कहा,—"मालूम होता है, हमने आपका बहुत कुछ समय नष्ट कर दिया।"

बेक्सटरने कहा,—"निःसन्देह, आज मेरा बहुत कुछ समय नष्ट हुआ है, कि जिसका क्षोभ मैं चिरकाल तक भोगूँगा।

मतलब यह है कि जिस प्रकार एक कृपण एक-एक पैसा करके धन सञ्चय किया करता है, उसी प्रकार वे आग्रह सहित प्रति क्षण का सञ्चय किया करते थे।

मिल्टनका कथन था कि, हम प्रातःकालको वहीं व्यतीत

करते हैं, जहां कि न्यायतः व्यतीत करना चाहिये। वह स्थान घर है। सम्भव है, हमारे इस सूत्रका मतलब कोई यह समझ ले, कि यदि हम प्रातःकाल घरपर बिताते हैं, तो कौन-सा कठिन काम करते है? सोते हुए अनेक प्रकारकी चिन्ताओं में जो समय बिताते है, उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि हम उस सर्वश्रेष्ठ समयको कार्य्यावस्थामें बिताया करते थे। जाड़ों के दिनोंमें तो हम उस समय काममें लग जाते थे, कि जिस समय लोग पूजापाठ करते हैं, अर्थात् ब्राह्ममूहूर्त्तमें जाड़े और गर्मियोंमें काममें लग जाते थे। जिस समय वनके समस्त पशु-पक्षी उठनेकी तय्यारी करनेकी बाट जोहते हैं, हम उठकर जब तक धारणा-शक्ति पुस्तकाध्ययनरूप भोजन नहीं पा लेती थी, तब तक ग्रन्थावलोकन करते या घरके बालकों को जगाकर उनका पाठ पढ़ा देते थे। इसके बाद शरीरको सुस्थ और सबल बनानेका कोई आवश्यक शारीरिक काम किया करते थे।

(१४)

इतिहास-प्रसिद्ध अनेक पुरुष-पुङ्गवोंने अपने दैनिक कामसे भिन्न कार्य्योंमें अवसर और मूहूर्त्तों का सदुपयोग करके यश अर्ज्जन किया था। मिष्टर हर्बर्ट स्पेन्सरने अनेक पुस्तकों के प्रणयन द्वारा उसी समय प्रसिद्धि प्राप्त की थी, कि जिस समय वे आयर्लैण्डके लार्ड डिपुटीके सेक्रेटरी जैसे दायित्वपूर्ण पद पर अधिष्ठित थे। सर जौन लावक बैंकके व्यस्त जीवनमें

जितना भी अवकाश पाते, उसीमें ऐतिहासिक गवेषणा करके यशशील हुए थे। सेडे अपने जीवनका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोते थे। फलरूप आज वे एक सौ बढ़िया पुस्तकोंके रचयिता के नामसे प्रसिद्ध है।

विद्यावारिधि स्वर्गीय पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्र अपने जीवनका सदुपयोग करनेसे ही एक अति हीन अवस्थासे उन्नत हो लोक-पूजित हुए। वे एक विद्यालयमें अध्यापकी करते और महीने के तीसों दिन विविध सभाओंमें व्याख्यान देनेके लिए देश-विदेश घूमा करते थे और उस घूमनेके लिये रेल-यात्रामें जो समय पाते, उसीमें प्रायः पुस्तक-प्रणयन करते थे। फलत, वे भी आज एक सौ सारगर्भ पुस्तकोंके प्रणेता और अनुवादक के नामसे प्रख्यात है।

होथर्नकी नोटबुकके देखने से पता चलता है, कि उन्होंने कभी सामन्य सी चिन्ता और घटना को तुच्छ नहीं समझा। फ्राङ्कलिन अत्यन्त परिश्रमी थे। वे दिन-रातके समयको विभक्त कर, उसमेंसे थोडा समय निद्रा और भोजनमें लगाकर, अवशिष्ट समस्त समय पुस्तकाध्ययन में ही व्यय करते थे। समयका मूल्य उनकी बराबर किसी ने नहीं जाना। प्रमाणतः बाल्यकालमें जिस समय वे अपने माता-पिता के साथ एक टेबिल पर भोजन किया करते, तब ईसाई धर्म्मावलम्बी होनेके कारण, भोजनसे पहले उनके माता-पिता ईश्वरके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन-स्वरूप प्रार्थना किया करते थे। इस प्रार्थनामें उनका

कमसे कम आध घण्टा व्यय होता था। फ्रेङ्कलिन थे पुरुषार्थवादी, उन्हें इस आध घण्टेका इस प्रकार व्यय होना बुरा मालूम होता। वे कहते—"पिता जी! क्या यह प्रार्थना संक्षेप में नहीं की जा सकती?"

उनकी बहुतसी बढ़िया-बढ़िया पुस्तकें जहाज़ पर यात्रा करते समय ही प्रणीत हुई थीं। जो लोग व्यर्थ जीवनके विवरण-दर्शनमें कहा करते हैं कि, हमें तो कभी समय ही नहीं मिला, वे कृपाकर रैफलकी स्वल्प सैंतीस वर्ष के कीर्त्ति-पूर्ण जीवनका अध्ययन करें।

यदि भगवान शङ्कराचार्य्य,समयकी महिमासे अवगत न होते, तो बत्तीस वर्षकी अवस्थामें संसार-व्यापी बौद्धधर्म्मका विजय और असंख्य ग्रन्थोंका प्रणयन न कर सकते।

संसारमें जितने महापुरुष हुए, वे सब समयके सम्बन्ध में कृपण रहे। सिसरोका कथन है कि, जिस समयको अन्य लोग आमोद-प्रमोद, मानसिक और शारीरिक विश्राममें ख़र्च किया करते हैं, उसका दान मैंने दर्शनोंके अध्ययन से दिया।

लार्ड बेकनका यश इङ्गलैण्डके चान्सलर-पद पर नियुक्त होनेके ऊपर प्रतिष्ठित है, अर्थात् उन्होंने संसारसे जितनी भी कीर्त्ति प्राप्त की,वह केवल उस समय,जिस समय अपनी नौकरी से उन्हें कुछ थोडासा अवकाश मिलता था।

सुना जाता है, कि जर्मनीके प्रसिद्ध कवि गेटेने राजाओं से

वार्त्तालाप में समय बितानेकी अपेक्षा, अपने विचारोंको लिपिवद्ध करनेमें व्यतीत किया था। "फाष्ट" इसीका फल है। सर हाम फ्रिडेवी ने उस समय यश-प्राप्तिकी साधना की, कि जिस समय एक डाक्टरके यहाँ कम्पाउण्डरी किया करते थे।

पोप महाशय कर्म्म-व्यस्त समस्त दिनमें जिन चिन्ताओंको करते, उन्हें सारी रात जागकर नोट किया करते थे।

जार्ज स्टिफेन्सन समय के मुहूर्त्तों को ऐसे आग्रहसे रखा करते थे, कि जिस प्रकार सर्राफ लोग सोनेके टुकड़ों को। फलतः, उन्होंने इन्हीं मुहूर्त्तोंमेंही अपने तईं शिक्षित बनाया और कीर्त्ति प्राप्त की।

मिष्टर मेजटे अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोते थे। यहाँ तक कि, जिस समय वे किसी पुस्तक या लेख की रचना करते, उस समय उन्हें कभी-कभी दो दिन और एक रात बिना सोये ही बीत जाते थे। यहाँ तक कि जब वे मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए थे, उस समय भी 'प्रे' नामका क्षुद्र गीत-काव्य लिखा था।

सीजर महोदयका कथन है, कि मैंने भीषण युद्धकालमें भी शिविरमें बैठकर अनेक विषयों पर चिन्ता की हैं।" इतना ही नहीं, एक बार आप कहीं की यात्राके उपलक्षमें जहाज़ पर जा रहे थे, कि दुर्दैव-वश जहाज़ डूब गया। वह तो यों कहिये कि, आप तैरना जानते थे, इससे समुद्र पार करके किनारे आलगे। किनारेपर कुछ लोग खड़े थे, जिन्होंने उन्हें ऊपर आनेमें

साहाय्य दिया। जब आप ऊपर आ गये, तो लोगोंने आपके सिरपर काग़ज़ोंका एक फ़ुलिन्दा बँधा पाया। यह काग़ज़ों का पुलिन्दा उनकी लिखी अङ्गरेज़ी की प्रसिद्ध पुस्तक "कासे-एटरोज़"की पाण्डु लिपि थी। जिस समय जहाज़ डूब रहा था, उस समय आप उसकी रचनामें मशग़ूल थे।

सेमुएल वेजेट का जन्म मानों कार्य्य-निमग्नावस्थामें ही हुआ था। उनकी जीवनीका लेखक एक स्थानपर लिखता है, "उनके जीवनमें यदि कोई महत्त्व-पूर्ण और उल्लेखनीय विषय है, तो उनकी कार्य्यकारिणी प्रवृत्ति। वे मरण पर्यन्त कामही करते रहे। जिस प्रकार प्रकृतिशून्यता का परिहार कर देती है, उसी प्रकार वे भी आलस्य से घृणा करते थे। उनके लिये कर्म्महीन जीवन एक घण्टेके लिये भी नरक-तुल्य था।

रविवारके विषयमें स्वयं वेजेट महाशय लिखते हैं, कि सप्ताह-भरमें उसकी बराबर कोई मनहूस दिन नहीं। उसमें निरानन्द और कष्टकर विश्राम करना पड़ता है। उस दिनमें ऐसी बुरी लत है, कि चेष्टा करने पर भी वह मुझे प्रातःकाल ५॥ बजे से पहले पलँगसे नहीं उठने देता।

डाक्टर मेसनगुडने, लण्डनके रोगियोंको देखनेके लिए जाते समय, रास्तेमें घोड़ेकी पीठपर 'लूकेसियस' का अनुवाद किया था। डाक्टर डरविन अपनी अधिकांश रचनाएँ यत्र-तत्र घूमते हुए ही लिपिबद्ध किया करते थे। हौरने अङ्क-शास्त्रके यन्त्र

तैयार करनेके समय रसायन और विज्ञान-शास्त्रका ज्ञान प्राप्त किया था। हेनरी कार्क होवेटने ग्रीक भाषा का अध्ययन उस समय किया था, जिस समय वे क़ानून पढ़नेको एक वकीलके पास जाया करते थे; अर्थात् उनको ग्रीक भाषाको शिक्षाका व्यापार रास्तेमें सम्पादित होता था। डाक्टर वार्निने इटाली और फ्रान्सीसी भाषाको घोड़ेकी पीठ पर सीखा था। मैथ्यूएल ने, जजका काम करते हुए सफरमें 'कौन्टेम्प्लेशन्स' की रचना की थी।

(१५)

वर्त्तमान उस कच्चे मालकी बराबर है, कि जिसके द्वारा हम जो चाहें निर्माण कर सकते हैं। भूतकालके पचड़ों को लेकर, अनुशोचनाओंमें समय मत खोओ; भविष्यके स्वप्न देखकर व्यर्थ कालक्षेप मत करो, वरन वर्त्तमानका आलिङ्गन करो, जो तुम्हारे हाथमें है और जिससे तत्काल तुम्हारी मनस्तुष्टि हो सकती है। दुनियामें ऐसे लोग विरल हैं, जो एक घण्टे का मूल्य निरूपण कर सकें। एक ज्ञानी पुरुष का कथन है, कि किसी समय विधाता ने एक मुहूर्त्त को भेजा था और दूसरा मुहूर्त्त तब तक नहीं भेजा, जबतक कि अपने पहले मुहूर्त्त को वापस न बुला लिया।

(१६)

मिस्टर जानसन ने अपनी माँ की अंत्येष्टि-क्रिया के ख़र्च के लिये एक सप्ताह-भर की केवल सात सन्ध्याओंमें 'रासेलस'

की रचना की थी। प्रसिद्ध पण्डित केटो कहा करते थे, कि वे अपने जीवन-भरके तीन कामोंके लिये विशेष अनुतप्त हैं। एक तो उन्होंने किसी समय अपनी पत्नीसे कोई गुप्त बात कह डाली थी। दूसरी; कहीं शीघ्र जानेके लिये स्थलपथ को छोड़ जलपथ से यात्रा की थी और तीसरी यह कि, जीवन-भरमें एक दिन उन्होंने बिना किसी प्रकारका परिश्रम किये ही बिता दिया था।

अब्राहम लिंकनने ज़मीन खोदते समय क़ानून-शास्त्र का अध्ययन किया था। श्रीमती सोमरविलने उद्भिद्-विद्या और ज्योतिर्विद्याका उस समय ज्ञान-सञ्चय किया था, जिस समय अन्य स्त्रियाँ अपनी सहेलियों के साथ गप-शप किया करती हैं। यही नहीं, जिस समय वे अस्सी वर्ष की वृद्धा हो चुकी थीं, उस समय उन्होंने Molecular and Microscopical Science का निर्माण किया था।

(१७)

मुहूर्त्तों के नष्ट या अपमानित होनेसे समयको इतनी क्षति नहीं पहुँचती, जितनी हमें पहुँचती है; अर्थात् बेकार रहनेसे हमारी शक्तिका अपव्यय होता है। आलस्य हमारे स्नायुओंको वृथा उत्तेजित और पेशियों को शिथिल कर देता है। कारण—काम करनेमें शृङ्खला है और आलस्यमें उसका एकदम अभाव है।

(१८)

अच्छे कामोंको अवसर की प्रत्याशाओंमें मत डाल रक्खो। जो व्यक्ति हर समय कार्य्य करने के लिये तत्पर रहते हैं, एक दिन वेही धर्म्मशाला, कुएँ, बाग़ अस्पताल, अनाथालय और विद्यालयोंकी स्थापना कर जाते हैं। अनेक लोक-हितकर अनुष्ठानोंके प्रतिष्ठाता हम उन्हीं को देखते हैं।

(१९)

समय ही कुवेरका धन-भण्डार है। जिस प्रकार हम लोग धनको सबसे अधिक प्यार करते हैं; वाहियात कामोंमें उसका अप-व्यय करना नहीं चाहते, समय पर भी उसी प्रकारका मोह होना चाहिये। कारण,—धनका पिता एकमात्र समय ही है। समयके नाशसे सामर्थ्य और शक्तिका नाश होता है। व्यभिचारसे चरित्र-नाश होता है,किन्तु समयका नाश ऐसे सुयोगोंका नाश है, जो फिर कभी नहीं लौट सकते। अतएव भूलकर भी समयका नाश मत करो, वरन् श्रद्धाके साथ उसका सद्व्यवहार या अच्छा उपयोग करो, क्योंकि हमारा भविष्यत् उसीमें निहत है।

पाँचवाँ अध्याय।

अपने पराजयमें निडर रहना चाहिये।

विवेक वचनावली

यह कोई गौरव का विषय नहीं है, कि हमारा कभी पतन नहीं हुआ। जितनी बार पतन हो, उतनी बार उठ सकनेमें ही परम गौरव है।"

—गोल्डस्मिथ।

"पराजय ही उच्च शिक्षा है। जिन्हें उत्कर्ष प्राप्तिकी इच्छा हो, वे सबसे पहले ऐसे काम करें, जिनसे पराजय का मूल्य मालूम हो सके। क्योंकि पराजय ही तो उन्नत होनेका प्रथम सोपान है।"

—वेण्डेल फिलिप्स।

"कई बार असफल होनेसे ही मैं सत्याग्रहमें सफल और विजयी हुआ।"

—महात्मा गांधी।

(१)

आज अखाड़ेमें बड़ी भारी भीड़ है। चारों ओर पंक्तिबद्ध हज़ारों रोमन पुरुष और स्त्रियाँ, शिशु और युवक, बालिका और वृद्ध बैठे हैं। क्यों?—किसलिये? आज मल्ल-भूमिमें पापी क्रिश्चियन हिंस्र जङ्गली जानवरोंके साथ युद्ध करेंगे। वे अपनी इच्छासे ऐसा नहीं करेंगे, वरन् उन्हें ज़बर्दस्ती वन-जन्तुओंका भोजन बनाया जायगा। फिर यह लोगोंका समागम क्यों? यह समागम इसलिये हुआ है, कि देखें, वे मृत्यु-मुखसे बचनेके लिये कैसी निष्फल चेष्टायें करेंगे? सबसे पहले दो पहलवानोंमें लड़ाई होगी। इनमें जो हार जायगा, वही मौत का शिकार होगा। उसीके लिये मृत्यु अनिवार्य है। हार-जीत की रीति यह निर्द्धारितकी गयी है, कि, एक पहलवान् दूसरे पहलवानको ज़मीन पर पटक कर, दर्शकोंकी ओर देखे। यदि दर्शकोंमेंसे कोई आदमी उसे अँगूठा पकड़कर उठाले, तब तो ज़मीन पर पड़ा आदमी बच सकता है और यदि ऐसा न हो सके, तो उसी वक्त वह मार दिया जाय। यही जय-पराजयका नियम है। जिसके लिये इस प्रकार मृत्यु निर्धारित हुई है, वह यदि अपने गले पर तलवार चलवानेमें इधर-उधर या आना-कानी करे, तो चारों ओरसे तत्काल निष्ठुर चीत्कार होने लगे, कि "ऐसा मत करो। इसे खूनी हाथीके आगे डालदो।" इस प्रकार वहाँ पर अत्याचारकी लीलाएँ चरितार्थ होती थीं। अस्तु।

इस समय मल्लभूमिमें दो वीरोंने आगमन-पूर्वक उच्चकण्ठसे कहा,—"महाराज! मरण-पथके दो यात्री आपको अभिवादन करते हैं।" यह कहनेके बाद युद्ध आरम्भ होगया। दोनों पहलवान् मौत की बाज़ी बदकर आपसमें लड़ने लगे, लड़ते-लड़ते बहुत देर होगयी, उनके सारे शरीर पसीनोंसे शराबोर होगये; समस्त अङ्गोंमें धूल लिपट गयी। इसी समय दर्शकोंकी भीड़मेंसे सहसा एक वृद्ध अखाड़ेकी सीमा या मेंड़को लाँघ कर मल्लभूमिके बीचमें आ खड़ा हुआ। नङ्गे पाँव और नङ्गे सिरसे; वह आदमी मरण-पथके यात्री उन दोनों पहलवानोंके मध्य भागमें जा डटा और बोला,—"बस। बस! शान्त होओ!" सारी जनता आश्चर्य्यसे कुछ देर तो अवाक् रही; अनन्तर उनमें से कुपित विराट् अजगरकी फूँफ,ँ की भाँति एक हिस्हिस शब्द उठा। आवाज़ें आने लगीं—"बूढ़े लौटआ, वापस आ!" किन्तु सब वृथा, वह पक्व-केश संन्यासी—स्तब्ध और अचञ्चल है, पत्थरकी मूर्त्तिकी भाँति उदासीन है। रक्तसे पागल हुए मनुष्यों का गर्ज्जन-तर्ज्जन मानो मौत का आवाहन है। दर्शक बोले,—"मार दो! इस बूढ़ेको अभी काटकर फेंक दो। इसका इतना साहस!" इसके बाद—शान्ति-स्थापनके अभिलाषी वृद्धका देह भूलुण्ठित, और देखते-देखते शोणितसिक्त कर दिया गया। अब उसके देहपर निस्तब्ध हुए पहलवान फिर युद्ध करने लगे।

पर इन बातोंसे क्या होता है? एक दीन दरिद्र और वृद्ध

संन्यासी का इस प्रकार मारा जाना क्या न्याय हुआ? उसे मारनेकी क्या ज़रूरत थी? जो उम्रमें नये थे, रक्त-पिपासु लोगोंकी तृप्तिके लिये उन्होंने ही सबसे प्रथम मृत्युका वरण कर रक्खा था! जिनका शरीर अति बलिष्ठ था; जब उन्हीं रूपवान् युवकोंने प्राण विसर्ज्जन करना अपना लक्ष्य समझ लिया, तब उस बूढ़े की मौत से लोगोंको क्या सन्तोष हुआ? और फिर वह वृद्ध सुपरिचित नहीं। न मालूम रूमी था या क्रिश्चियन? अब क्या था, अबतो अज्ञानान्धकारमें पड़े रोमनोंकी आँखोंके आगे घड़ा अविचार का पर्दा हट गया। वे अपनी वीभत्स कीर्त्तिकी प्रत्यक्ष भयावनी मूर्त्तिको देख सिहर उठे! उसी समय 'अन्याय' 'अन्याय' की आवाज़से देश भर गया और तभीसे रोम-साम्राज्यसे यह प्राणघातक खेल का पापी-कौतुक नष्ट होगया।

संन्यासीके पराजयकी भित्ति पर चिरस्थायी जयकी प्रतिष्ठा हुई। इस पापी प्रथाको बड़े-बड़े विद्वानोंके तर्क और उपदेश नष्ट न कर सके, उसे एक वृद्धको आत्मबलिने मूलतः भ्रष्ट करा दिया। यही कारण है, कि उसका स्मृति-चिह्नरूप सुविस्तीर्ण मल्लभूमिका भग्नावशेष अभी तक सुरक्षित है।

ठीक है, कीर्त्ति र्यस्य सजीवति।

(२)

जो लोग यथासाध्य चेष्टा किया करते है, उनका पराजय कभी नहीं होता। सम्भव है, संसार उनको अवज्ञा कर सके,

परन्तु उनकी चेष्टाओंकी माप, विश्व-विचारके एकमात्र विचारक परमात्माके तुलादण्डसे निरूपित होगी। विना कारण फल प्राप्ति नहीं होती एवं न अकारण संसारमें शक्ति-व्यय होता है। अतः यह निश्चित है, कि विवेकानुमोदित एकाग्रता एक न एक दिन पुरस्कार लाभ करेगी।"

जीवन की प्रथम शिक्षा यही है, कि किसी प्रकार पराजयसे जय का प्रभव हो। जिस समय हम विफलतासे मृतप्राय और आपत्तियोंसे परेशान होते हैं, उस समय व्यर्थताके बड़े भारी ढेरमेंसे भावी जयका बीज आविष्कृत करना कोई सामान्य बात नहीं। उसके लिये यथेष्ठ साहस और मानसिक तेजकी आवश्यकता होती है, किन्तु विना ऐसा किये दूसरा और कोई उपाय ही नहीं। कारण ; इसीके द्वारा सफल और विफल का मध्यवर्त्ती प्रभेद निर्द्धारित होगा। मनुष्यको अपनी व्यर्थता पर पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये, वरन् यह देखना चाहिये, कि उसने व्यर्थतासे क्या वस्तु प्राप्त की है ? अथवा उसने विफलताको किस रास्तेसे ग्रहण किया है ? व्यर्थ होनेके बाद भी उसने क्या किया, उसके मनकी अवस्था कैसी होगयी, उसने संसार-दृष्टिके पर्दे-स्वरूप अन्धकारमें तो आश्रय नहीं लिया ? उसमें सफलता प्राप्त करनेका साहस रहा है अथवा नहीं ? क्या वह अब फिर एक अदम्य उत्साहको लेकर काममें लगेगा ?

जो प्राण-पणकी चेष्टाओंके साथ कार्य्य करने पर भी उसमें असफल होजाते हैं एवं फिर नवीन उद्यम और निर्भयताके साथ

कार्य्य क्षेत्रमें अवतरण करके आते हैं, उनके लिये कुछ भी चिन्ता नहीं, वे एक दिन निश्चय ही जय प्राप्त करेंगे।

(२)

हेनरीवर्ड बीचरका कथन है, कि पराजय ही मनुष्यकी अस्थियोंको पत्थरकी भाँति कठिन बना देती है। पराजय ही मनुष्यको अजेय बना देती है एवं ऐसे वीरोंकी सृष्टि करती है, जो संसारकी सर्वोपरि उच्च स्थान पर खड़े हो सकें। अतः पराजयसे कभी मत डरो। क्योंकि जब तुम किसी अच्छे कार्य्यके अनुष्ठानमें असफलता प्राप्त करो, तब समझ लो कि तुम जयके नज़दीक आ पहुँचे हो।

व्यर्थता सहिष्णुता और मानसिक तेज की अन्तिम या चरम परीक्षा होती है। वह या तो जीवनको एकदम चूर्ण कर देती है या अति सुदृढ़ और बलिष्ठ बना देती है।

मिस्टर कर्टिसके मतमें एक दृष्टिसे देखने पर यही मालूम होगा, कि व्यर्थता ही साफल्यका पक्का रास्ता है। उदाहरणतः; किसीने कहा,—"अमुक बाग़में जो कमलोंके पेड़ हैं उनके पत्ते सोनेके हैं। यद्यपि यह बात एकदम झूठी है, तथापि सम्भव है, तुम उनकी खोजमें उस बाग़में जाओ। उस समय तुम उनकी प्राप्तिके लिये जिन और जिस प्रकारकी चेष्टाओंको काममें लाओगे, वे स्वयं तुम्हारी समझमें वृथा विश्वासकी भूलका निर्देश कर देंगी, जिससे भविष्यत्में तुम उनका यत्न-पूर्वक त्याग कर सकोगे।

जो निष्कपट हैं, सत्यके साधक हैं, वे कभी विफल-प्रयत्न नहीं होते। वास्तवमें, है भी यही बात ठीक। जिनके उद्देश्य साधु या सर्वप्रिय हैं, उनका किया कोई भी काम व्यर्थ नहीं होता। असलमें व्यर्थता कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, हमारे मनमें जो सत्यता और श्रेष्ठता है,उसे न माननेको ही विफलता या व्यर्थता कहते हैं।

मिस्टर रैले अपने जीवनमें एक बार नहीं कईबार विफल हुए। उन्हें अनेक कामोंमें अनेक बार असफलताका सामना करना पड़ा था, किन्तु उनका नाम चिरकाल तक महत् चरित्र और असीम चेष्टाओंके साथ जटित रहेगा।

यह ठीक है, कि हङ्गरीके मिस्टर कैसुटको कितनीही बार असफलताओंके कष्ट भोगने पड़े, किन्तु उनका जीवन उनकी वाणी और उनकी निष्ठा चिर दिनों तक मनुष्योंको स्वराज्य एवं कल्याणकारी पथ पर चालित करती रहेगी।

हमारे देशमें भी यद्यपि आजकल कितने ही देश-भक्तोंका कण्ठ नीरव होगया है, तथापि उनकी उच्चारित वाणी हमारे हृदयमें प्रतिष्ठित है।

जो लोग आज संसारकी दृष्टिमें अपमानित हैं, विद्रूप और हास्योंके कषाघातोंसे जर्ज्जरित हैं, सम्भवतः कल उनका ही जय-गान सहस्र कण्ठोंसे ध्वनित होगा।

अत्याचारित कवि डाण्टे आज जिस कब्रमें चिरनिद्रा का उपभोग कर रहा है, उसी कब्रमें आज दिन भी उसकी पूजा

होती है। इसी प्रकार घृणासे पूजा, जीवित दशामें उपहास और मरनेके बाद प्रशंसा एक नहीं अनेक मनीषी कवि और साहित्य-स्रष्टाओंके भाग्यमें बदी होती है। आप लोग जिसे पराजय कहते है, साहसी उसे जय की भित्ति समझ कर समय पर आलिङ्गन करते है।

पराजितोंके सम्बन्धमें श्रीमती स्टो कहती हैं, कि इस पृथ्वीपर ही उन पराजितोंको एक दिन अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। जो नाम एक दिन पददलित होते हैं, समुज्ज्वल पताका की भाँति धूलिमें धूसरित होते हैं, समय आनेपर वे ही नाम फिर विश्वमानवोंके सामने गौरव सहित अपना मस्तक ऊँचा करके खड़े होंगे।

गेरिसिन या फिलिप्सने अविचार-शील लोगों द्वारा फेंके गये सड़े अण्डे, उपहास और अवाज़े-तवाज़ोंका भी ख़याल नहीं किया। डिमास्थनीज़ और डिसरैलीने संसारके विद्रूपकी उपेक्षा की थी। कारण; वे अपनी शक्ति-सीमाको पूर्वसे ही भले प्रकार पहचान गये थे और उन्हें यह भी परिज्ञात होगया था कि, एक न एक दिन अवश्य ऐसा आवेगा, जिस दिन संसार के लोग उनकी बातोंको ध्यान-पूर्व्वक सुनेंगें और उनपर ध्यान देंगे। अपमानसे म्रियमान और पराजयसे उत्तेजित होकर उनकी मुँहकी अर्गला या ज़ञ्जीर टूट गयी थी। जो पराजय एक साधारण मनुष्यको नीरव और विवश बना देती है, उसीने इन सब व्यक्तियोंको दृढ़-प्रतिज्ञ कर दिया था। इस बातको कौन

खबर रखता है, कि दुर्बल, पङ्गु और दृश्यतः पराजित लोगोंके निकट संसार कितना ऋणी है। चिरस्थायी अपमानके हाथसे रक्षा पानेके लिये जो लोग प्राण-पणसे चेष्टा किया करते हैं, एक दिनकी वही चेष्टा उन्हें अमर बना देती है। बाइरनने अपने कठोर पाँव और उनके न होनेसे पैदा हुई रुकावटको तुच्छ करनेके लिये ही, गानों द्वारा अपने हृदयको प्रकाशित किया था। संसार का एक सर्वश्रेष्ठ रूपक वेडफोर्ड के कैद होजाने से ही जनसाधारण को प्राप्त हुआ है। बेनियनने अपनी बारह वर्ष व्यापी कैद की अवधिमें जो कुछ रचना की, वह उसके पूर्व या परवर्त्ती जीवनको अतिक्रम कर गयी; अर्थात् कैद होनेसे पहले और बादको वे कुछ भी न रच सके, जो कुछ काव्य या अन्य ग्रन्थ बने सब जेलमें।

ऐसे लोगोंको जीतकर अपने वशमें कर लेना मृत्युके लिये भी असम्भव है। निठुर अत्याचारोंसे रेगुलेस का भौतिक देह एकदम ध्वंस कर डाला गया था, किन्तु उनकी आत्माने सारे रोमको उत्तेजित कर दिया। पृथ्वीकी पीठसे कार्थेज लुप्त होगया। विकेल रीडने आष्ट्रियनोंके आगे अपने प्राणोंको निकाल कर रख दिया; पर आज समस्त स्वीज़रलैण्ड स्वाधीन है। यह ठीक है कि लिंकनने एक खूनीके हाथों अपने प्राणोंको नष्ट कर दिया; किन्तु उनके जीवनके समस्त कार्य प्रत्येक विचारशील व्यक्तिको उसका कर्त्तव्य-पथ दिखाते है। महा-राणा प्रताप बारम्बार-युद्धमें पराजित हुए, राज्य भ्रष्ट गृह-

शून्यहो, उपवास और अनाहारके कष्ट सहते हुए जङ्गलों-जङ्गलों फिरे, तथापि वे देश-भक्ति और वीरत्वका जो आदर्श स्थापित कर गये हैं, क्या वह अविनाशी नहीं है ?

जो कभी विफल नहीं होता, वह कभी सफलताको भी नहीं पाता। जो लोग हितकर कामोंमें आत्मदान करते हैं, उनके लिये जय का लाभ अनिवार्य्य है। संसारमें जो लोग विफल हुए हैं, मानो स्वर्ग का द्वार उन्हींके लिये खुला हुआ है, जिनलोगोंको अपने समस्त जीवनमें व्यथा और कष्ट प्राप्त हुए है, जीवन-भर व्यापिनी चेष्टाओंका कुछ पुरस्कार प्राप्त नहीं किया। एवं जो लोग जीतते हैं, पर जीतका गौरव नहीं प्राप्त कर सकते, जो वीर हैं, संसार उन्हें वीरता का मुकुट नहीं पहिनाता, भले ही न पहनावे, किन्तु असलमें श्रेष्ठ तो वे ही है—वीर तो वे ही है।

जीवनके आरम्भमें ही आपत्ति-शून्य साफल्य प्राप्तिमें विपत्तियोंकी सम्भावना रहती है। सावधान! प्रथम बारमें जय प्राप्तकर उन्मत्त मत होजाओ। सम्भव है, वही तुम्हारी भविष्यत् विफलता का मूल कारण हो जाय। पहले-ही-पहल जय प्राप्तकर अति उन्मत्त होजानेसे सैकड़ों का ध्वंस हो गया। यह ठीक है कि, वनस्पतियोंका मस्तक आँधी और झड़ोंकी ताडनाओंसे भूमिको स्पर्श करता है, किन्तु जब वे प्रकृतिके साथ युद्धकी समाप्तिमें मस्तक ऊँचा करके खड़ी होती हैं, तभी यह बात प्रकाशित होती है कि, उनकी शक्ति कितनी अदम्य

है। इसी प्रकार मनुष्यका पतन और उत्थान होता है, अतः वह एकदम चिन्ताका विषय नहीं। किन्तु आपत्तियाँ उसी समय अपना असर करती हैं, जिस समय मनुष्य गिरकर फिर न उठ सके।

(४)

संसारके समस्त कार्य्य साहस के ऊपर प्रतिष्ठित हैं। विश्वमें वही सबकी अपेक्षा बड़ा है, जो जय और पराजयके बीचमें जन्म-ग्रहण करता है। आराम, व्यक्तिगत और जातिगत स्वतन्त्रता तथा इसके अलावा भी जिन-जिन सुखोंके हम अधिकारी हैं, वे सब दुर्गतिके मध्यस्थलोंमें निवास करनेसे प्राप्त हो सकते हैं। यदि तुम आज किसी प्रकारकी दुर्गतिके अन्धकारमें पड़े हो, तो उससे घबराकर दिग्मूढ़ मत बनो, वरन् प्रयत्न-पूर्वक साधना करो। एक दिन इसी अन्धकारमें आलोकका पथ प्रकाशित होगा।

(५)

पराजयके चङ्गुलसे जयको निकाल सकना और बाधा-विपत्तियोंको उन्नतिके सोपानरूपमें व्यवहृत करनाही साफल्य लाभका अमोघ अस्त्र है।

तीसरी बार समुद्र-यात्रा करनेके बाद कोलम्बस ने जिस जगत् का आविष्कार किया, वहींसे वह ज़ञ्जीरों से जकड़कर देशमें ले आया गया। उस समय यद्यपि वह देशवासियोंकी सहानुभूति और रानी की करुणाओंसे स्वच्छन्द

बना दिया गया, तथापि अत्याचार उसके साथही रहे। सत्तर वर्षकी अवस्थामें लम्बे पर्यटन के बाद वह दुर्बल और अशक्त होकर स्पेन लौटा। इस बार उसके मनमें आशा थी,कि वह राजा द्वारा पुरस्कृत होगा और यदि पुरस्कृत नहीं भी हुआ, तो अनन्तः रोटी कपड़े का अभाव तो अब उसे व्याकुल नहीं करेगा। किन्तु विफल! असफल! उसकी समस्त प्रार्थनाएँ व्यर्थ हुईं। आह! दरिद्र असहाय वृद्ध कोलम्बस को उस समय कैसी शोचनीय अवस्था थी। धनाभावसे लेनदारोंने उसके शरीरके कपड़े तक उतारकर नीलाम कर दिये। अनन्तर एक दिन जब उसे समस्त संसार अन्धकार-मय दीख पड़ने लगा, मृत्यु मुँह फैलाकर सामने खड़ी होगयी; तब उसने उच्च कण्ठ से कहा,—"रे राज-पशुओ! मैने सुदूर पूरबमें भारत नामका महादेश आविष्कृत किया है। जाओ, उससे लाभ उठाओ।" कोलम्बस मर गये। उनके जहाज़ के द्वितीय कर्मचारी के नामसे उन्हींके आविष्कृत संसारका वृह-त्तम देश परिचित हुआ। कोलम्बस इस समय नहीं हैं। संसारने उनके परिश्रमका उनकी जीवितावस्था में मान भी नहीं किया। इससे कोई यह न समझ ले कि, कोलम्बसका जीवन व्यर्थ हुआ। जिन जनहीन महादेशोंका उन्होंने आवि-ष्कार किया था, वहाँ के असंख्य अधिवासियों से आज पूछो, कि क्या कोलम्बस व्यर्थ-जीवी थे? उत्तर मिलेगा, नहीं। उन्होंने अपने जीवनमें दुःख-दैन्य और व्यर्थताओंका भार वहन कर,

मरणके अन्तमें अमृत लाभ किया था। उनके बराबर तो अपने जीवनकी सफलता को कोई भी नहीं पा सकेगा।

(६)

जिस कम्पनी-द्वारा हमारी इस पुस्तकका आज प्रकाशन हो रहा है, उसके चीफ पार्टनर श्रद्धेय बाबू हरिदासजी वैद्यको अपने जीवनमें कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़े—जिन्होंने हिन्दी बङ्गवासी में छपी आपकी आत्मकथा पढ़ी होगी, वे इस बातसे भले प्रकार परिचित होंगे, कि आपके कार्य्यक्षेत्र में आई हुई आपत्तियाँ कितनी भयानक थीं।

जैसे आप आज वैभव-सम्पन्न हैं, वैसे ही आप अपने जीवनके आरम्भमें भी थे। उस समय आपको एक अच्छे और धनाढ्य घरानेमें जन्म लेनेका गौरव प्राप्त था। भगवान्‌की विचित्र लीला के अनुसार, एक निराशाजनक पराजयने आपके चलते हुए काम को एकदम चौपट कर दिया। यहाँ तक कि उस पराजयके जालमें फँसकर आप अपने जीवन से भी निराश हो बैठे। आपको अपने जीवनमें बड़े-बड़े संकटों का सामना करना पड़ा। कालचक्रके फेरमें पड़कर, आपको अनेक दिलदहलानेवाली विपत्तियाँ उठानी पड़ीं। कई बार आपको आत्मघातके पाप-विचारको भी प्रश्रय देना पड़ा। एकबार आपको दिगन्तव्यापी बाढ़के जल और सामने आती हुई ट्रेनके बीचमें फँस कर, कठिनतासे अपनी प्राण-रक्षा करनी पड़ी। एक बार आपको पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिये, भिक्षाटन तक

करना पड़ा। इस तरह आपको घोर दुरवस्थाके सम्मुखीन हो भाँति-भाँतिके कायिक और मानसिक कष्ट उठाने पड़े; पर आपमें कुछ विद्या-बल और आत्माभिमान था। उस आत्माभिमान ने ही आपके विवेकको तत्काल सत्पथको ओर आकर्षित तथा उत्तेजित किया। बारम्बार आपद् पर आपद् उठाने पर भी आप धैर्य्यच्युत न हुए, भाग्यके साथ न देनेपर भी आप भाग्य से खम्भ ठोककर लड़े। बारम्बारकी पराजयकी आपने परवा न की। आप एक पाई पास न होनेपर भी, कार्य्यक्षेत्रमें कूद पड़े और अपने सत्य और दृढ़ अध्यवसायसे यथेष्ट उन्नति करके पुनः वैभव-सम्पन्न हुए। इस समय भी वही सत्य और श्रम आपके कर्म-पथके सम्बल हैं। आज भारतमें ऐसा कौन पढ़ा-लिखा है, जो आपको नहीं जानता? जो मनुष्य पराजयकी परवा नहीं करते, विपदमें धैर्य्यच्युत नहीं होते, सत्य और श्रम का आश्रय लेते हैं, वे निश्चयही ऐश्वर्य्यके सिंहासन पर आसीन होकर पुरुषसिंह कहलाते हैं। आपकी आत्म-कथा "हिन्दी-बङ्गवासी"में छपी थी। उसीसे हमने यह मसाला लिया है; अतएव हम हिन्दी-बङ्गवासी-सम्पादक बाबू हरिकृष्णजी जौहर महोदयके बहुत ही आभारी हैं, जिन्होंने ऐसे धीर और उद्योगी पुरुषकी जीवनी छापने की कृपा की।

छठा अध्याय ।

सफलताका मूल्य ।

विवेक वचनावली ।

"जीवन संग्रामसें विजय प्राप्त कर लेना कोई सरल काम नहीं है। उसके लिये कठोर साधनाकी आवश्यकता है।

—सर आर्थर हेल्प्स ।

"जो सफलताके अभिलाषी हैं, वे सदा शूरवीरोंकी भाँति अपने कार्य्य-क्षेत्रोंमें डटे रहते हैं। भीरु मनुष्यों को कभी सफलता का नाम भी नहीं लेना चाहिये।" —जेनकिन्।

"बिना वेदनाओंके विजय नहीं मिलती। विजय-गौरव विष-पानकी भाँति है। जो लोग अपने मस्तक पर यशका मुकुट जनतासे रखवाना चाहते हैं, वे प्रत्येक कार्य्य को सोच विचार और अध्यवसायके साथ करते हैं।" —रवीन्द्रनाथ ।

"यदि तुम्हारी इच्छा फूलोंसे सजे सिंहासन पर बैठने की हो, तो वहाँ तक पहुँचने के लिये रास्ते में जितने भी काँटे पड़े मिलें, सबको अपने पैरोंसे रौंद डालो। रास्तेके समस्त रोड़ोंको

पीस कर विजय-रूप शोणित का टीका अपने मस्तक पर लगाओ। —लिङ्कन।

(१)

सफलता प्राप्त करने का एकमात्र उपाय कठिन परिश्रम है। किन्तु जिस परिश्रम में बुद्धि या मस्तिष्कका संयोग न हो, वह एकदम व्यर्थ है।

महापुरुषोंकी वचनावली से हम उनके साफल्य-लाभका मूल कारण जान सकते हैं। जो लोग, जो महापुरुष संसार पर अपनी कीर्त्ति की छाप लगा गये है,—जैसे जोशुआ, रेनल्डस, डेविडविल्की आदि—उन सबका मूल महामन्त्र यही है कि, "काम करो! संसार का सार काम है! कीर्त्ति की प्राप्ति काम करनेसे ही होती है।"

(२)

स्वनामधन्य ज्योतिषी मि० माइकेल एञ्जेलो एक अद्भुत कर्मी पुरुष थे। उन्हें काम करनेमें इतनी तत्परता थी, कि रातको वे इसीलिये कपड़े पहने सो जाते थे, कि मैं सोकर उठते ही काम करने लगूँ।' उनके जीवनमें एक भी दिन ऐसा नहीं बीता, जिस दिन उन्होंने रातको उठकर काम न किया हो।

विख्यात अङ्गरेज़ औपन्यासिक सर वाल्टर स्काटमें असाधारण परिश्रम करने की शक्ति थी।

वेवर्लि ने प्रति वर्ष बारह उपन्यास लिखे थे। यद्यपि

अपने जीवनमें उन्हें और भी अनेक काम करने पड़ते थे, पर जिस तरह भी हो सकता, एक मासमें एक बढ़िया और बड़ासा उपन्यास रच डालना उनका मुख्य काम था।

(३)

प्रकृति उपदेश देती है,—"संसार के मनुष्यो! जहाँ तक हो, काम करो अन्यथा अनाहार या भूखों मरना पड़ेगा।" लोगों को मानसिक नैतिक और शारीरिक प्रायः सब प्रकारके काम करने चाहियें; अन्यथा प्रकृतिके अलङ्घ्य नियमों के अनुसार अव्यवहारी की मृत्यु अनिवार्य्य है।

मनुष्य अपनी चेष्टाओंसे ही प्रकृत मनुष्य बनता है। विधाता भी यही चाहते हैं। जो लोग अपनी चेष्टाओंसे मनुष्य न बनकर अकर्म्मण्य या पशु बन जाते हैं, विधाता का उनपर अतिशय कोप होता है। विधाता यदि चाहते, तो हमारे मुँह में अन्न तक अपने हाथोंसे पहुँचा सकते थे। यदि चाहते तो, मनुष्य को सदा-सर्वदा बाइबिल और कुरानमें वर्णित सकल ऐश्वर्य्य और सौन्दर्य्यके आधार सुख-स्वच्छन्द-पूर्ण 'ईडिन गार्डिन' या बाग़े अदन में रख सकते थे। किन्तु जिस समय उन्होंने मनुष्यकी सृष्टि की, उस समय विधाता के मनमें उसके पेट और देह की क्षुधा निवृत्ति के साथ एक और भी उत्तम और भारी उद्देश्य था। उस उद्देश्य का नाम है, मनुष्यके देवत्त्व गुण को जाग्रत करनेकी शक्ति प्रदान करना। बहिश्त के सुखों की प्रचुरता में रहकर मनुष्य का वह देवत्त्व

गुण किसी समय भी जाग्रत न होता। जिस अभिसम्पात के फलसे उस नन्दन-कानन से मनुष्य विताड़ित हो, सिर पर अनेक कष्टोंके प्रहार को सहकर, अन्न-संग्रह करने को बाध्य हुआ, क्या यह विधाता का श्रेष्ठ आशीर्वाद नहीं है? यदि यह भार मनुष्यके सिर पर न रक्खा जाता एवं इसी के चक्रमें पड़ मनुष्य का देवत्व गुण किसी समय विकसित न हो सकता, तः विधाता की श्रेष्ठ सृष्टि व्यर्थ हो जाती या नहीं? इस लिये उसने जिस बहु आयास के अति दुर्भेद्य आवरणमें हमारे निःसीम सुख और परम मङ्गलको छिपा रक्खा है, उसमें अवश्य एक अत्युपयोगी उद्देश्य सन्निहित है। यदि हम जी-तोड़ परिश्रम करें, उस देवत्व गुण को जाग्रत करने की चेष्टा में दिन-रात साफल्य की ओर अग्रसर होते रहें, तो यह निःसंशय है, कि दुनिया हमारा एक देवता की तरह मान करे, यही दयाकी सफलता का मूल्य है।

(४)

संसारका कोई भी न्याय-सङ्गत कार्य्य हेय नहीं है। अन्याय-युक्त कार्यों को छोड़, प्रायः सभी कामों का मूल्य समान है। अमेरिका की स्वधीनता-प्राप्ति के समय एक बार कितने ही मार्किन सैनिकोंने एक प्रकाण्ड काष्ठ-खण्ड को उठानेकी चेष्टा की थी। काष्ठ बेहद भारी था, इसी से वे अनेक चेष्टाएँ करने पर भी उसे न हिला सके। पासही एक उच्च कर्म्मचारी भी खड़ा हुआ था, जो उन उठाने वालोंको बीच-

बीचमें उत्साह प्रदान करनेके लिये चिल्ला उठता था । इसी समय वहाँ एक अश्वारोही युवक आ पहुँचा और घोड़े से उतर उसने तत्काल सैनिकों की सहायतार्थं उस काष्ठके उठाने में हाथ लगा दिया । इस द्विगुण ज़ोरको पाकर काठ उठ गया । अनन्तर उस युवकने उस कोरे उत्साहदाता उच्च कर्म्मचारी के पास जाकर कहा,—"आप वहाँ खड़े-खड़े तो चीख रहे हैं, पर यह नहीं हुआ, जो हाथ लगाकर उनकी सहायता कर देते।"

कर्म्मचारी नाक सिकोड़ता हुआ बोला,—"आप यह कैसी प्रीति-विरुद्ध बात कर रहे है ? आप जानते नहीं, मैं कोर-पोरेल हूँ ! फिर भला मैं सामान्य सैनिकोंके साथ किस प्रकार परिश्रम कर सकता हूँ ।"

युवक ने कहा,—"आप कोरपोरेल हैं। ठीक है। वास्तवमें आप जैसे उच्च कर्म्मचारीको साधारण सैनिकोंके साथ काम करनेमें इज़्ज़त का ख़याल रखना चाहिये। पर जनाब ! मैं इस बारेमें तनिक भी लज्जा अनुभूत नहीं करता। मेरा नाम जार्ज वाशिङ्गटन है ।'

यह सुनतेही उच्च कर्म्मचारी महाशयके पसीना आ गया। वे मारे लज्जाके बुरी तरह लाञ्छित हुए ।

(५)

जिस समय तक रोमन लोग किसी भी न्याय-सङ्गत काम के करनेमें कुण्ठित नहीं हुए थे, उस समय उन्होंने अपनी उन्नति को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया था , किन्तु जब उन्होंने

एक दिन प्रभूत धन और क्रीत दासोंके अधिकारी हो, कर्म्म से घृणा करना सीख लिया, तभी आलस्य और पापने तत्काल उस विलासिणी, धनोन्मत्त और अन्याय-निष्ठ जातिको दुर्गति के पङ्कमें फँसा दिया। जिस समय रोमका पतन हुआ, उस समय योशू क्राइष्ट ने अपने महत् जीवनके द्वारा परिश्रमको सम्मानके सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया था। उस वक्त उन्होंने यह नहीं कहा कि, हे आलस्य-परायण सुखान्वेषी और विलासी रोमन लोगो, तुम हमारे पास आओ। उन्होंने यह कहा,—"हे परिश्रम से थके मनुष्यो! आओ, मेरे पास आओ।"

प्रकृति मनुष्यका अन्वेषण करती है, न कि धन वा यशका। वह एक मनुष्यत्व गुणयुक्त मनुष्यको उसके परिश्रम का यथेष्ट मूल्य देती है। वह इस बातके लिये अनेकानेक युगोंसे आयोजन करती आती है, कि मेरी इस सृष्टि में मनुष्य आयेगा। मैं उसके लिये संसार में निवास करना सम्भव कर दूँ। अतः वह समयानुसार समय को डोर मनुष्य के हाथमें दे देती है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी श्रेष्ठ सृष्टि का एक आदर्श निर्माण करनेमें वह अनेक उपायोंका अवलम्बन करती है। यही कारण है, कि, उसने मनुष्यको अपना भोजन अपने आप संग्रह करनेके लिये बाध्य किया है एवं यही सबब है, जो वह मनुष्य को इस बातसे कभी विस्मृत नहीं होने देती, कि किसी लाभकी प्राप्तिका सुगम उपाय एकमात्र संग्राम है। अतः सार्थकताके पथके पथिक बनो।"

अनेक साधना और विविध कष्टोंके बाद जभी एक कार्य्य समाप्त होता है, कि उसी समय मनुष्यका मोह कट जाता है। प्रकृति एक और मोहक पुरस्कारको लुभानेवाली विविध सज्जाओंसे सजाकर हमारे आगे रख देती है। उसे देख हम भी लोभी बालककी भाँति, उस पुरस्कारको पानेकी आशासे, पुनः कार्य्य-संग्राममें खम ठोक कर उतर पड़ते हैं।

इस प्रकार नये-नये संग्रामोंमें जय प्राप्त करते-करते हमारी कर्म्मशक्ति जाग्रत हो उठती है, और उस समय हम सहिष्णुता, संयम, अध्यवसाय और एकाग्रताके शिक्षार्थी बन जाते हैं।

(६)

कर्म्म ही मनुष्य का प्रधान शिक्षक है, और कर्म्म की पाठशालाही संसारकी श्रेष्ठ पाठशाला है।

अन्धे की भाँति परिश्रम करनेसे कोई लाभ नहीं होता। जो परिश्रम मस्तिष्क या बुद्धिकी परवा नहीं करता, वह परिश्रम किसी कामका नहीं होता।

एक लुहार पाँच रुपये के लोहेसे घोड़ेकी नाल बनाकर दश रुपये पैदा करता है। दूसरा लुहार उसी लोहेसे एक छुरी बना कर दो सौ रुपये पैदा करता है और तीसरा लुहार उसी लोहेसे लौह घड़ियाँ और स्प्रिङ्ग बनाकर दो लाख रुपये पैदा करता है।

तदनुसार हम जिस शक्ति और सामर्थ्य के साथ जन्म-ग्रहण करते हैं, उसके सम्बन्धमें भी यही एक उदाहरण घटित

होता है। हमें उसके द्वारा कुछ न कुछ अवश्य करना होगा। बहुतसे ऐसे मनुष्य हैं, जो अपनी स्वाभाविक शक्ति द्वारा सौन्दर्य्यकी सृष्टि करते अर्थात् आवश्यकीय पदार्थ गढ़ते हैं। क्योंकि शारीरिक परिश्रमके साथ उनका मस्तिष्क भी परिश्रम करता है। और बहुतसे ऐसे हैं, कि जिन्होंने जन्म तो समान शक्तियोंको लेकर ही ग्रहण किया है, किन्तु उनके काम बिना उद्देश्य और बिना विवेकके होते हैं।

(७)

हमारा जगत् 'हो सकता था' कहनेवाले आदमियोंसे ही भरा हुआ है, अर्थात् जब कभी उनको विफलताका कारण पूछा जाता है, तो वे यही कहते हैं, कि यदि हमारे आगे अमुक-अमुक प्रतिबन्धक न होते, तो अमुक काम हो सकता था या हम उसे कर सकते थे। ये लोग भी सफलताकी प्रत्याशा करते हैं, किन्तु बहुत सस्ते कामोंमें सफलता का पूर्ण मूल्य देनेके लिये इनमेंसे कोई भी प्रस्तुत नहीं है, अर्थात् इनलोगोंकी उन्हीं व्यक्तियोंमें गणना है, जो बिना युद्ध किये ही जयकी प्रत्याशा करते हैं। ये ऐसी कोमल समरण-भूमिका अन्वेषण करते हैं, जिसके ऊपर चलनेमें अधिक परिश्रम न करना पड़े, पर वे यह नहीं समझते, कि ठोकर खाना ही तो चलने या मञ्जिल पूरी करनेके प्राण हैं।

(८)

जो जितने महत् फलका प्रत्याशी है, उसे उतनाही अधिक

परिश्रम करना चाहिये। क्योंकि जो व्यक्ति सफलताके सर्वोच्च शिखर पर चढ़ना चाहता है, उसे उस सफलताका मूल्य स्वयं ही देना पड़ता है। वहाँ वंश-मर्यादा अथवा धन-गौरवको मान नहीं दिया जाता। भलेही ऐसे लोग सर्व्वोच्च वंश-सम्भूत क्यों न हों, भले ही वे किसी राज्यके उत्तराधिकारी क्यों न हों, सफलता इन दिखाऊ चीज़ोंसे नहीं ख़रीदी जाती। उन्हें अपनी ही शक्ति और सामर्थ्य के बलसे मनुष्य बनना पड़ेगा।

सफलता का लाभ केवल उसके इच्छुक होनेसे ही नहीं होता। जो सफलता इच्छासे प्राप्त होती है, उसका मूल्यही कितना है? मूल्य देकर जो चाहोगे, वह मिल तो अवश्य जायगा; किन्तु यह तो बताओ, तुम सफलता की कामना कितने परिमाणमें करते हो? उसका कितना मूल्य दोगे एवं उसके लिये कितने दिनों तक अपेक्षा करोगे?

तुमने उत्तर दियाकि, हम शिक्षा-लाभ करना या शिक्षित होना चाहते हैं। पर यह तो बताओ, क्या तुम 'थार्लोविड' की भाँति ईखके खेतोंमें जाकर गन्नोंके छिलके जला, उसके आलोकमें पढ़ सकोगे? क्या तुम उसके समान एक पुस्तकको लानेके लिये नङ्गे पाँव, एक फटी दरी का टुकड़ा ओढ़, एक कोश-व्यापी बर्फ़ीला रास्ता पार करने का कष्ट उठा सकोगे? क्या तुम दारुण दारिद्र्यसे पीड़ित हो, अनाहारसे अति जर्जरित होते हुए भी, रातको जागकर लिखने और पढ़नेमें अपनी शक्तिका व्यय और घोर परिश्रम कर सकोगे? ज़ोन स्काट

की भाँति प्रातःकाल चार बजे उठकर, रातके दश ग्यारह बजे तक जागते रहनेके लिये सिरपर पानीसे भीगी तौलिया डाल-कर पाठाभ्यास कर सकोगे? अथवा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की भाँति नींदको दूर भगानेके लिये, आँखोंमें सरसोंका तेल आँज कर, रात-भर अपने पाठको याद कर सकोगे? क्या तुम्हें विद्यासे इतना प्रेम है, जो तुम पुस्तक तो ख़रीद नहीं सकते, पर उसे लेनेके लिये अब्राहम लिंकन की भाँति पैदल बीस कोस का रास्ता तय किया करो? कोई मनुष्य यह न समझे, कि ज्ञान लाभका रास्ता अति सुगम और प्रशस्त है। उस रास्ते पर फूलकी कोमल पङ्खड़ियाँ नहीं बिछी हुई हैं। असली शिक्षा प्राप्तिका वास्तविक पथ घोर कण्टकोंसे भरा हुआ है। उसपर चलनेसे प्रत्येक पद पर देह क्षत-विक्षत हो जाती है—व्यर्थता और असफलताओंके भारसे हृदय भी अवसन्न या श्रमित होजाता है।

यह तो तुम्हारी शिक्षित बननेकी इच्छाका भाव हुआ। अब तुमसे यह पूछते हैं, कि क्या तुम एक प्रसिद्ध वक्ता बनकर संसारके समस्त लोगोंके हृदयों पर आधिपत्य विस्तार करना चाहते हो? यदि हाँ, तब क्या तुम डिमॉस्थनीज़की भाँति समुद्रके किनारे जाकर, महीनो तक आवाज़ साधनेका अभ्यास करोगे? एक विशेष अङ्ग-संञ्चालनके भाव-दोषको दूर करनेके लिये, उनकी भाँति क्या तुम भी नीचे लटकी हुई तीक्ष्णधार विशिष्ट एक तलवारकी नोकके नीचे खड़े होकर, व्याख्यानकी आवृत्ति

का अभ्यास करोगे? जिस समय तुम्हारे व्याख्यानके प्रत्येक वाक्यपर श्रोताओंके विद्रूप हास्यसे समस्त सभामण्डल मुखरित हो उठेगा, उस समय क्या तुम डिसरेलीके पार्लीमेण्ट में पुन: पुन: व्याख्यान देनेसे बाज़ न आनेकी भाँति सभामण्डपमें पूर्वसे भी अधिक दृढ़ होकर खड़े रह सकोगे? उनकी भाँति क्या तुम भी समस्त अपमानोंको सहकर,संसारके सुखी वृन्दसे प्रशंसा प्राप्त करने पर्य्यन्त, अविचलित चित्तसे अपनी साधनाको बढ़ा सकोगे?

यदि शिल्पी बननेकी इच्छा है, तो हम पूछते हैं, आपने बहुकाल-व्यापी परिश्रम और चिन्ताओंके बाद जिस रचना को जन्म दिया है, उसे सिद्ध करनेके लिये क्या आप माइकेल एञ्जेलोकी भाँति बारम्बार बिगाड़ सकेंगे? अपने पुरातन समस्त चित्रोंको एकदम मेटकर कई बार फिर बनानेकी कोशिश करेंगे?

यदि साहित्य-साधनामें शास्त्री होनेकी इच्छा है, तो जितने लेख और प्रबन्धोंको आपने बड़े प्रयत्नोंसे तैयार किया है, उनको सामयिक पत्रोंमें कड़ी आलोचना अथवा किसी सम्पादकद्वारा नापसन्द होकर वापस आने पर क्या आप भग्न-मनोरथ नहीं-होंगे? क्या आप अप्रसिद्ध जीवन समाप्त कर, अज्ञानित भावसे स्वर्ग-गमन कर सकेंगे? शेक्सपियर की भाँति नाटक-रचना करके भी प्रसिद्धि-प्राप्तिके लिये दो सौ साल की अपेक्षा कर सकेंगे? अन्ध कवि मिल्टनकी भाँति, बहुत कुछ परिश्रमके बाद, पैराडाइस लाष्ट (Paradise Lost) को मन-ही-मन

रचना कर, एवं उसे दूसरे व्यक्तिसे लिपिबद्ध कराकर, सवा दो-सौ रुपयेमें बेच सकेंगे? क्या आप तिलक की भाँति साहित्य-साधनामें उत्साह दिखा सकेंगे? एक निर्धन व्यक्ति कि, जिसका पिता भिक्षा-द्वारा अपना कुटुम्ब पालन करता था, जिसे पढ़ने-लिखनेमें किसी ओर से भी अधिक साहाय्य प्राप्त नहीं हुआ, जिसकी साहित्य-सेवाकी हँसी विपक्षी लोग सदाही उड़ाते रहे एवं जिसने बड़े अध्यवसाय और परिश्रमसे कमाया हुआ अपना २०,००० रुपया, अनेक कष्टोंका सामना करते हुए भी, साहित्य-सेवामें उत्सर्गित कर दिया, उसकी भाँति साहित्यकी निःस्वार्थ पूजा, आप कर सकेंगे? डिकुइन्सने अतुलनीय अलौकिक दर्शन और विश्लेषण लिखनेके लिये जैसी दारुण यन्त्रणाओंका भोग किया था, क्या तुम भी साहित्य-सेवाके लिये वैसी ही यन्त्रणाएँ सह सकोगे?

परिपाईटिसकी भाँति क्या तुम भी पाँच दिनमें तीन लाइन लिखकर सन्तुष्ट हो सकोगे? आइज़क न्यूटनके एक जटिल गणनामें बहुतसे वर्ष लगजानेके बाद, एक दिन उनके कुत्तेने समस्त काग़ज़-पत्रोंको नष्ट कर दिया था; किन्तु इससे वे निरुत्साहित नहीं हुए! उन्होंने फिर आरम्भसे गणना करनी आरम्भ करदी। क्या तुममें न्यूटन की भाँति उत्साह है? कार्लाइलने अपने रचित 'फरासीसी विद्रोह'की पाण्डुलिपि किसी मित्रको देखनेके लिये दी थी। मित्रके नौकरने असावधानता-वश उसे आग सुलगानेके लिये जलाकर भस्म कर दिया। पर

कार्लाइल भी इस घटनासे हतोत्साह नहीं हुए। उन्होंने अवि-चलित चित्तसे फिर उस इतिहासकी रचना की। क्या आपमें ऐसा अदम्य उत्साह है? क्या आप फ्रेङ्कलिन की भाँति फिला-डेलफियाके रास्तोंमें ठेलागाड़ीमें साहित्य-साधनाके उपयुक्त सामग्री का संग्रह करते फिर सकोगे!

क्या तुम उद्भावन और नवीन आविष्कारोंके द्वारा अपनी जातिका मुखोज्ज्वल करना चाहते हो? यदि करना चाहते हो, तो क्या तुम भी मिस्टर पेलिसी की भाँति अपने एक दो आवि-ष्कारोंमें सर्वस्व बिक जाने या जलकर भस्म हो जानेकी परवा नहीं करोगे? पेलिसीका एक एनेमेल तैयार करनेमें सर्वस्व नष्ट होगया, स्त्री विमुख होगयी, घर की बहुतसी आवश्यक वस्तुएँ जल गयीं; किन्तु वह, अपने मानसिक बलके भरोसे, अटल प्रतिज्ञा पर डटा रहा।

ख़ाली इच्छाओंको मन-ही-मन पुष्ट करते रहनेसे सहज्जन बननेका सुयोग नहीं मिलता। लोकपूज्य या लोकमान्य बननेके लिये बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं। अपने सुखोंकी सफलता की प्राप्तिके लिये ज़बर्दस्ती और सज्ञान अवस्थामें ठोकरें खानी पड़तीं एवं आपत्तियोंको दलना पड़ता है।

(८)

प्रकृति समाज-द्वारा रची हुई उच्च और नीच श्रेणियोंको नहीं मानती। राज-प्रासादोंमें मूर्खों का जन्म हो सकता है—संसारके त्राण-कर्त्ता अस्तबलमें पैदा हो सकते हैं। वास्तवमें

सम्माननीय और पूजनीय वे लोग हैं, जो सर्दी-गर्मी और वर्षाको अपने सिरों पर झेलकर खेतोंमें नित्यप्रति दारुण परिश्रम करते हैं, कल और कारखानोंको चलाते हैं; एवं समस्त देशके भरण-पोषणके निमित्त उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करते हैं। उच्च श्रेणीमें भी इन्हीं की गणना की जासकती है। नीच श्रेणीके वे पुरुष हैं, जो ग़रीबोंकी कमाईको आत्मसात् कर, रेशम और साटनके कपड़े पहन, मखमली गद्दों पर पड़े हुए आलस्यमें समय नष्ट किया करते हैं; मानो प्रकृतिने कोई काम ही नहीं रचा है। इन्हींकी असाधुता और शठतासे देशका दरिद्र-दल जीवन-संग्राममें परास्त हो, अशेष यन्त्रणाओं का भोग करता है।

(१०)

जो सफलता का इच्छुक है, उसे उसका यथेष्ट मूल्य अवश्य देना पड़ेगा। धोखे-धड़ी व्यर्थ होंगी। जो व्यक्ति कार्य्य-व्यापारको अपने अस्थि-मज्जागत समझेगा, उसे उसकी सिद्धिके लिये अपने मन और प्राणोंको भी उसीमें लगा देना पड़ेगा। जो अटल प्रतिज्ञाएं पराजयको जीत समझती हैं, क्षुधा और लोगोंके वाक्य-वाणों पर भ्रू-क्षेप नहीं करतीं; समस्त कष्ट, आपत्तियों और अभावोंको तुच्छ समझती है, उक्त व्यक्तिको उन्हीं प्रतिज्ञाओंका आश्रय ग्रहण करना होगा। क्योंकि जिन लोगोंने संसारको विशृङ्खल और मूढ़ताके अन्धकारसे निकाल उच्चतम सभ्यताके आलोकमें लाकर प्रतिष्ठित किया था, वे बढ़िया कपड़े

पहन कर जगत्को चमत्कृत करनेवाले सौभाग्यवान् नहीं थे; पितृ-पितामह या बाप दादोंके इकट्ठे किये हुए धनसे पुष्ट हो कर्म्मकुण्ठ और आलसी नहीं थे; उनका पालन दुःख, दारिद्र्य और अनेक अभावोंमें हुआ था, उन्हें जीवन-भर जीर्ण और पुराने वस्त्रोंके पहननेका अभ्यास था। वे न्याय-पथ पर रह, सदा दारिद्र्य भोग करनेमें अकुण्ठित-चित्त रहते थे। उन्होंने अपना भाग्य स्वयं निर्माण किया था।

सातवाँ अध्याय।

आगे बढ़ो।

विवेक वचनावली।

"उचित कामोंको, जहाँ तक हो सके, शीघ्र कर डालना चाहिये, क्योंकि शुभ कार्य्यों का मुहूर्त्त शीघ्रता ही है।" —कार्लाइल।

"जो लोग आवश्यक कामोंके आरम्भ करनेमें 'कल' 'परसों' या 'एकमास'के भविष्य का चिन्तवन किया करते हैं, समझलो वे उस कार्य्यके करनेमें सर्वदा असमर्थ हैं। —ब्राउन।

"जो लोग गिरते है, खड़े होनेकी प्रकृत शक्ति उन्हींमें है। अतः गिरनेकी भयसे अग्रगन्ता बननेके गौरवसे हीन मत बनो।" —जोजेफ।

"सत्य काम आदर्श या शुभ समयको नहीं खोजता।"

—ग्लाडस्टोन।

"शुभस्याचरणं शीघ्रम्" —नीतिवाद।

यदि तुम्हारे मनमें उच्च अभिलाषाएँ यथेष्ट रूपसे पुष्ट हैं, तो तुम्हारे द्वारा बड़े-बड़े काम होजाने अति सम्भव हैं। क्योंकि मनुष्य जो कुछ सोचता है, उससे बड़ा काम नहीं कर सकता। प्रवाद भी है—"जैसा मन वैसा काम"। यदि तुम्हारे हाथ जिस कामको करनेके लिये जबर्दस्ती मजबूर किये जायँ, और मन उसके लिये गवाही न दे, तो समझलो वह काम अपूर्ण रह जायगा। कारण; मनकी दौड़ जहाँ तक होती है, हाथ उसकी बराबरी नहीं कर सकते।

यदि आप किसी सङ्कीर्ण सीमामें अपने मनको प्रतिष्ठित कर देंगे, तो आपका कर्मक्षेत्र भी उतनाही सङ्कीर्ण दीख पड़ेगा। एवं जिस समय मन उक्त सीमाको त्यागकर सीमाके बाहर दौड़ेगा, तभी कर्मक्षेत्रका विपुल विस्तार दृष्टिगोचर होगा। जिस क्षेत्रमें साधारण मनुष्योंका मन कभी-कभी कष्टोंसे कुण्ठित हो जाता है, वहाँ महापुरुषों का मन सहजहीमें विचरण किया करता है।

(२)

उच्च अभिलाषाएँ मनुष्यको एकदम दूसरा रूप प्रदान कर देती हैं। जिस समय उनका उदय होता है उस समय मनुष्य सुख-स्वाच्छन्द्य का कोमल आवरण छिन्न कर, कठोर काम और दारुण कष्टोंको वरण कर लेता है। भय और कुण्ठता उसके मनसे उस वक्त एकदम पलायन कर जाती हैं। अदम्य अभिलाषाओंको चरितार्थ करनेके लिये, वह तूफानकी भाँति पृथ्वी और आकाशको एक कर देता है।

बड़े और प्रतिभाशाली कर्म्मी पुरुषोंकी चेतावनियाँ प्रायः नित्यप्रति इस बातके लिये सावधान करती रहती हैं, कि अपनी अत्युच्च अभिलाषाओंको कभी नष्ट न होने दो, उत्साहकी अग्नि को कभी निर्वापित होने या बुझने न दो। जिन उन्नतिके सोपानोंको वर्त्तमान सभ्यताशाली, पर आलसी व्यक्ति कभी नहीं देख सकते, आशाएँ उन्हें ही हमारा हाथ पकड़ कर गन्तव्य पथ निर्दिष्ट करती हैं। यद्यपि यह ठीक है, कि हर समय मनुष्यकी आशाएँ मनोमत फल प्रसव नहीं करतीं, पर उनके अनुसार कार्य्य करनेसे हम शक्ति लाभ ही करते हैं और जीवनके विस्तृत-क्षेत्रका भली प्रकार ज्ञान प्राप्त कर लेते है। यदि हमारी आशाएँ किसी उचित पथका निर्देश न करें, तो यह निस्सन्देह है, कि हम अन्धोंकी भाँति पद-पद पर ठोकरें खायें। हमारी प्रतिज्ञाओंका मुख्य काम यह है, कि हम जिस काममें लिप्त हों, उसके उच्चतम शिखर पर चढ़नेकी चेष्टा करें, अपने मनके सामने सदा किसी न किसी उच्च आदर्शको बनाये रक्खें, जो सफलता प्रदानके मुख्यतम सहायक हैं।

(२)

यदि तुम अपनी दृष्टि ज़मीन पर जमाये रहोगे, तो उच्च शिखर पर आरूढ़ होना असम्भव होगा। यदि उच्च बननेकी अभिलाषा है, तो आत्म-शक्ति पर विश्वास करो। अपने तईं तुच्छ मत समझो। जो अप्राप्त या अर्जित है, वही हमारे जीवनके उस समुच्च शिखरका निर्देश करता है, कि जहाँ पर

महाप्राण पुरुष विराजमान है। आशा ही आशाको फलवती करने की सूचना देती है। इस लिये आशाको कभी मत त्यागो, आशा करो आशा, एवं एकाग्रचित्तसे जीवन यापन करो। क्योंकि जीवन बचपनका खेल नहीं हैं। जीवन झूठी माया नहीं है। जीवन सत्य और सुन्दर है। जीवन की भाँति कोई भी वास्तविक वस्तु नहीं है। जीवनके कर्त्तव्यों का एक-मनसे पालन करो। एकाग्र और दृढ़चेता पुरुष के लिये संसार के समस्त कर्त्तव्य अति सामान्य हैं, पर उनकी संख्या अपरिसीम है।

जीवनमें ऐसे समय भी आते हैं, जब सम्मान-लोलुपता अति असार मालूम होने लगती है। धन की आसक्ति एक साथ नष्ट हो जाती है; पद-मर्य्यादा वृथा और शक्ति अप्रयोजनीय सी दीख पड़ती है। उस समय सिवा शान्ति के समस्त संसार असार सा मालूम होने लगता है। समस्त वाह्य सुविधा और सब प्रकारके गौरव अति तुच्छ और अकिञ्चित्कर प्रतीत होते हैं। इसी से तो विद्वान् लोग निःस्वार्थ उच्चाभिलाष को ही अपने मनमें स्थान देते हैं। उससे मन की शान्ति अटूट रहती है।

(४)

एशिया में अभी नवयुग नहीं आया। यहाँ के लोग नवीन और अच्छे प्रकाशों पर अनिच्छा प्रकट करते हैं। इन लोगोंके लिये जो व्यवस्था मान्धाता कर गये हैं, वही लोका-

नुसार देशोपकारी है। युग बीत जायँ, पर पुरातन सीमामें फँसे रहनेमें ही कल्याण है। विदेश मत जाओ, स्वदेश की कमियों को अनुभूत न करो। हमें सौ तरफ भ्रू निक्षेप करनेकी क्या आवश्यकता है? जितना भाग्य में है, उतने पर सन्तोष करो। ये इस देशके वास्तविक मनोभाव हैं। पर सच पूछो, तो इन्हीं भावोंको मनमें पुष्ट करते रहनेसे, हमलोग अधःपतन की चरम सीमा पर आ पहुंचे हैं।

यदि इस देशको बड़े होने की आकांक्षा है, तो वह सब से प्रथम अपनी शिक्षाको रीत्यानुसार व्याप्त और उदार बनावे। यह हम मानते हैं, कि जो लोग बड़े होनेकी आकाङ्क्षा का आदर करते है, वे बैठे बैठाये मानो स्वयं आपत्तियों को निमन्त्रित करते हैं। क्योंकि उसका आदर करनेसे कभी-कभी मनुष्य सङ्कीर्ण और एक-देश-दर्शी हो जाता है। प्रमाणतः—सुना जाता है, कि डारविन अपने बाल्यकालमें कविता और सङ्गीतके यथेष्ट भक्त थे. किन्तु समस्त परजीवन एकमात्र विज्ञान-चर्चामें अतिवाहित करने के बाद उन्होंने देखा, कि शेक्सपियर उनकी दृष्टिमें अत्यन्त नीरस सा प्रतीत होता है। उस समय उन्होंने दुःखानुभूति करते हुए कहा,—'अहो! यदि मेरा यह जीवन फिर से आरम्भ हो जाय, अर्थात् जो अवस्था अबतक व्यतीत हो चुकी है, यदि वह लौट आवे, तो मैं दिनके आठों प्रहरोंमें केवल कविता और सङ्गीत की चर्चा किया करूँ, जिस से इन मधुर रसोंके उपभोग करने की शक्ति लुप्त न हो।

(५)

जूलियावार्डहो का कथन है, कि मनुष्यके प्रत्येक जीवनमें थोड़ा-थोड़ा भेद अवश्य है। यदि उन्हें उच्च आदर्शों से पूर्ण न किया जाय, तो निरर्थक है।"

हमारे मानसिक पट पर नित्य अनेक प्रकारके नवीन चित्रोंका प्रतिबिम्ब पड़ता रहता है, यदि हम उस पर पड़ने वाले चित्रों के उन प्रतिबिम्बों मेंसे किसी बढ़िया प्रतिबिम्ब को चित्ररूपमें अङ्कित न करें, तो वह कायरता की धूलसे नष्ट हो जायगा।

(६)

सम्पादित कर्मके विभेदानुसारही जीवनकी सफलता या विफलता का निर्णय होता है। सम्भवतः यदि कोई व्यक्ति अपने प्राण और प्रण की चेष्टाओं से, सबसे बढ़िया ज्वारी या पूरा चोर होजाय, तो वह यह बात कदापि नहीं कह सकता कि मेरा जीवन सफल हो गया। यह हम मानते हैं, कि वह अपने व्यवसायमें बड़ा है, किन्तु उसकी सार्थकता, किसी अच्छे काममें लिप्त व्यक्ति की विफलता के बराबर भी नहीं है। मन को आँख कायम कर लेने या किसी नीचको समुज्वल बढ़िया पोशाक पहना देनेसे वह कभी उन्नत नहीं हो सकता। दुष्ट साधु नहीं होते; अग्नि का मेल नहीं निकल सकता। अतएव मनुष्य का जैसा आदर्श होता है, वैसाही उसका जीवन होता है।

(७)

किसी-किसी व्यक्ति की उच्च अभिलाषाएँ इस प्रकार होती हैं, कि वह सदा अपने पड़ोसीकी अपेक्षा बढ़िया कप पहने, बढ़िया खाये और बढ़िया ही सवारियोंपर चढ़े अथ किसी की उच्च अभिलाषाएँ देशके अधिकारियोंके प्रसन्न कर में विपुल धन-व्ययकर उपाधियों की माला धारण करने की होती हैं, पर इन अभिलाषाओंको प्रकृत अभिलाषाएँ नहीं कह सकते। उच्च अभिलाषाएँ नेपोलियन बोनापार्ट या सिकन्दर की आशाओंके जैसी होनी चाहिये। जिनमें आशा तो होती है, पर निम्न कोटिकी,—उनका उत्थान होनेके बदले सदा पतन ही होता है। डिसरेली का कथन है—"जो ऊपरको नहीं देखता, समझ लो कि वह नीचे की ओर अपना लक्ष्य रखता है। जिसका मन मुक्त-पङ्ख होकर नहीं उड़ सकता, वह निश्चय ही एक दिन धूलिमें गिरेगा।

(८)

हमें अपने जीवनको कैसा बनाना चाहिये, इस सम्बन्धमें संसारके प्रत्येक व्यक्तिके मनमें एक न एक आदर्श अवश्य होता है। उन्नतकामी के मनमें उन्नत आदर्श होता है एवं उसके अनुसार वह शीघ्र ही अपनी कामनाओंमें एक डिग्री अधिक सफल होता है। ऐसे लोगोंमें उस ढंगके लोग बहुतही कम होते हैं, जो अपनी वर्त्तमान अवस्थामें ही सन्तुष्ट रहें या

अपनी अपेक्षा उन्नत और ज्ञानी पुरुषोंकी कामनाओं की अव-हेला करे।

(९)

"हम जो कुछ है" और "हम जैसे होना चाहते हैं" इन दोनों वाक्योंमें यथेष्ट प्रभेद है। मानव-हृदयमें अनेक महान् आदर्श सञ्चित रहते हैं। उन आदर्शों को तुलिका द्वारा विचित्र रङ्गों से चित्रित करना, पाषाणमें मूर्त्तिका स्वरूप देना, सुरम्य निकेतनोंमें प्रस्फुटित करना, मनोहर सङ्गीत में व्यक्त करना एवं काव्य, नाटक, उपन्यास, दर्शन और निबन्धों द्वारा उनका परिचय प्रदान करना, मनुष्य को प्रकृतिसिद्ध है।

(१०)

फिलिप्स बुक्सका कथन है,—"एक यथार्थ मनुष्य अपनी अभिलाषाओं के अनुसार निरन्तर उनकी पूर्त्ति में निमग्न रहता है। उसका आत्मा तब तक सन्तुष्ट नहीं होता, जब तक वह अपने ध्येय पर नहीं पहुँच जाता। मनुष्य और तिस पर उच्चादर्श-सम्पन्न मनुष्य अपने भविष्य पर अविश्वास करता है, इसी से वह अर्द्धोन्नतिके सिर पर पहुँच कर भी, पूर्ण असन्तोष के साथ, पूर्णोन्नतिके लिए प्रयत्न करता रहता है।" फलतः, उसका निरन्तर आगे बढ़ना, एक न एक दिन उन्नति के शिखर पर पहुँच ही जाता है।

जार्ज इलियट का कथन है,—"जब तक हममें रस-पान की पिपासा है, तबतक हम उन वस्तुओंको बिना लिये कभी

सन्तुष्ट नहीं हो सकते, जिन्हें संसार का सुधी-समाज अच्छा कहता है। अतः प्रयत्न करो, ज़रूर उनको प्राप्ति होगी।"

(११)

हमारे प्राणों की इच्छा ही हमारे भाग्यकी भविष्यत्‌वाणी है। यौवनके समस्त स्वप्न जीवनमें सफल नहीं होते। वर्त-मान जिन वस्तुओंके ग्रहणकी प्रतिज्ञा करता है, भविष्यत कभी उन्हें नहीं देता। क्योंकि हम जिस किसी भी कार्य्य की पूर्त्तिमें हाथ डालते हैं, उसकी अर्द्धावस्थामें ही विधाता हमें हमारी मिहनत का थोड़ासा पुरष्कार दे देते हैं; फल यह होता है कि, हम लोभकी अत्यधिकता से उस यत्किञ्चित पुरष्कार को लेकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं और हाथ के काम को दूर फेंक कर निरुद्यमी होकर बैठ रहते हैं। वैसे तो हमारी आशा-आकाङ्क्षाओंमें अविलम्बरताके—पूर्ण न होनेवाले निःसीम जीवनकी कहानी सुस्पष्ट है।

(१२)

परोपकार या दूसरों के मङ्गल-साधन में ही जिनकी सार्थ-कता है एवं निखिल विश्वके कल्याणकारी कर्मों में ही जिन का नियोग है, संसार के प्रत्येक व्यक्ति के लिये वे उच्चाभिलाष ही वरेण्य और श्रेष्ठ है।

(१३)

अतः अभिलाषाओं की उत्पत्ति होने पर, जब तक तुम उनकी सीमा तक न पहुँच जाओ, तबतक आगे बढ़ने का

काम निरन्तर जारी रक्खो। उन्हें जब कभी बीचमें स्थगित कर दोगे, तो समझ लेना पूर्ण पुरस्कार के तुम किसी प्रकार भी अधिकारी नहीं हो सकते। पूर्ण पुरस्कार की प्राप्ति के लिये उद्यमशील बनकर—

"आगे बढ़ो।"

आठवाँ अध्याय।

सौजन्य की शक्ति।

विवेक वचनावली।

"यदि तुम अपने ऊपर संसार को मोहित करना चाहते हो, यदि तुम्हें जगत्के लोगों को वशमें करना है, तो तुम अपनी एक कुटेवको छोड़ दो। वह कुटेव एकमात्र 'कटु सम्भाषण' है।"

—गोस्वामी तुलसीदास।

"सत्य के साथ एक सौन्दर्य्यकी पुट मिला दो, घरभर तुम्हें दिल से प्यार करेगा।" —ग्लाडस्टन।

"अङ्गरेज़ जातिमें यदि कोई गुण है, तो यही कि वे शिष्टाचार के वास्तविक अर्थको समझते हैं।" —राजा शिवप्रसाद।

"कभी भूलकर भी अप्रिय व्यवहार मत करो। अप्रिय व्यवहार पशुत्व-द्योतक है।" —रहीम।

"प्रेम-व्यवहार संसारका प्रत्यक्ष अमृत-रस है। जिसको दो, वही प्रसन्न होकर पक्षपाती बन जाता है।" —मिस रोज।

"जज हेमिल्टन सचमुच पृथ्वीके देवता हैं। क्योंकि उनकी सुजनता के आगे सारा देश अपना शिर झुकाता है। —हेलेना।

(१)

सुव्यवहार या शिष्टाचार एक ऐसा सम्मोहनास्त्र है, जिससे समस्त संसार अपना पक्षपाती बन जाता है। फिर इसका अवलम्बन करना भी कुछ कठिन नहीं। प्रत्येक मनुष्य इच्छा करने से उससे सुशोभित हो सकता है। मुँह से दो मीठी बातें कहने में कुछ धनका व्यय नहीं करना पड़ता, वरन् इसकी सहायता से प्रत्येक मनुष्य मन मुआफ़िक़ प्रसन्न रक्खा जा सकता है। यदि स्वार्थ की दृष्टिसे ही इसकी उपयोगिता को देखो, तो कम आवश्यकता अनुभूत नहीं होती, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिको मीठी बातो से सन्तुष्ट करके बहुतसा काम लिया जा सकता है। रूक्ष और कटु वाक्यों से अपनी और दूसरे व्यक्ति की कितनी क्षति होती है, उसका परिमाण बाँधना भी कठिन है। यदि ज़बर्दस्ती किसी को भला-बुरा कहकर काम निकाला जाय, तो वह काम नहीं कहाता; क्योंकि उसमें इच्छा और आनन्द का सामञ्जस्य नहीं है तथा जिस काम की उत्पत्ति इच्छा और आनन्द से नहीं होती, वह कभी सुसम्पन्न नहीं हो सकता।

पाश्चात्य समाजमें शिष्टाचारके लिये कितने ही नियमों का निर्माण कर दिया गया है। मिलने-भेटनेके समय जो उनका सुव्यवहार करता है, वह सभ्य है, और जो उनके विप-

रीत आचरण करता है, वह असभ्य है। अँगरेज़ीमें उन नियमों का नाम 'एटीकेट' है।

(२)

एक बार तूफ़ानी हवाने मलय-पवनसे पूछा,—"तुम मेरी भाँति शक्तिशाली होना चाहते हो वा नहीं? मेरी शक्ति बड़ी विलक्षण है! देखो, जब मैं चलना आरम्भ करती हूँ, उस समय मनुष्य निशानों द्वारा समुद्र के किनारे-किनारे या स्थान स्थान पर मेरी आगमन-वार्त्ता की घोषणा कर देते हैं। तुम महान् प्रयत्न का अवलम्बन कर, एक मात्र छोटे पेड़ोंको केवल नीचे झुका देती हो, मैं बहुत ही सहज या साध्यता से जहाजों के बड़े-बड़े मस्तूलोंका ध्वंस कर देती हूँ। अपनी एक झपेटमें अनेक जहाज़ोंको उलट देती हूँ। मेरे आक्रमण से एटलाण्टिक महासागर तक उथल-पुथल करने और थरथर काँपने लगता है। मैं रोगी और दुर्बल का भय हूँ, मेरी तीक्ष्ण अनुभूतिसे उनकी हर एक हड्डी, प्रत्येक अवयव थर-थराने लगता है। मेरे बर्फ से भी अधिक ठण्डे हाथोंसे रक्षा पानेके लिये मनुष्य जङ्गलोंका नाश करके आग जलाते है; खानोंका निविड अन्धकार भेद कर कोयलोंकी अँगीठियाँ धदकाते हैं। मेरी फुँफकार से डरकर लोग प्राण-त्याग-पूर्वक श्मशान आबाद करते हैं। क्या तुम मेरीसी सामर्थ्य प्राप्त करना नहीं चाहते?"

मलय पवनने इस बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वह

चुपचाप आकाशतलमें व्याप्त हो गया। उसके व्याप्त होतेही समस्त नदी, तालाब और समुद्र; वन-उपवन और शस्य-क्षेत्र एवं पशु-पक्षी और मनुष्य प्रायः सभी हँस पड़े। संसारके प्रत्येक बागके फूलोंने प्रसन्नतासे प्रस्फुटित होना शुरू कर दिया। फलवाले वृक्षोंने खुशीसे भरकर, अपने रसाल फलों का जीवोंको दान देना आरम्भ कर दिया। खेत सुवर्ण-क्षेत्र से दीख पड़ने लगे। आकाशके असीम विस्तारमें मेघ-खण्ड सफेद रुईके गालोंके जैसा रूप धारण करके भर गये। पक्षि-योंके विचित्र वर्ण-पक्ष और नावों तथा जहाज़ोंके शुभ्र पाल सूर्य की किरणोंमें जगमगाने लगे। जिधर दृष्टि निक्षेप करो, उधर ही स्वास्थ्य और सौन्दर्य्यका विकाश दृष्टिगोचर होने लगा। इस प्रकार मलय वायुने निर्दय, गर्वित और तूफ़ानी हवाको उसके प्रश्नका उत्तर या अपनी कीर्त्तिका परिचय अपने मुखसे न देकर, हरित पत्र, फलफूल, शस्यक्षेत्र, सौन्दर्य्य, आनन्द और प्राणसञ्चार-पूर्ण संसारके जीवोंसे इस प्रकार दिला दिया।

(२)

सुना जाता है कि, एकबार भारतेश्वरी विक्टोरियाने अपने पति प्रिन्स एलबर्टके साथ प्रभुत्वके स्वरसे वार्त्तालाप किया। उससे प्रिन्स महोदय विक्टोरियासे नाराज़ होकर, अपने कमरेमें जा किवाड़ बन्द करके बैठ गये।

पाँच मिनिटके बाद किसीने दर्वाज़ेको थपथपाया।

विक्टोरियाके स्वामी प्रिन्स एलबर्टने पूछा,—"कौन है?"

रानीने गर्वित भावसे उत्तर दिया,—"मैं हूँ इङ्गलैण्डकी रानी ; दर्वाज़ा खोलो !"

फिर कोई शब्द नहीं सुन पड़ा ।

थोड़ी देर बाद दर्वाज़ेपर मृदु कराघात हुआ । अन्तर सुनायी दिया,—"मैं विक्टोरिया हूँ, आपकी दासी हूँ ; किवाड़ खोलिये." फिर दर्वाज़ा बन्द न रह सका । परस्परका मनो-मालिन्य भी दूर हो गया ।

जिस प्रकार रमणियोंमें मनमोहक सौन्दर्य है, उसी प्रकार पुरुषोंमें नम्रता है । नम्रताके सामने बड़े-बड़े शक्तिशाली व्यक्तियोंकी [illegible]-मानकी हार हो जाती है ।

(४)

बहुकालकी पुरानी एक किम्बदन्ती कहती है, कि किसी समय बैनेडिक्ट नामका एक संन्यासी पोपकी आज्ञासे किसी धर्म-मन्दिर या गिर्जेसे निकाल दिया गया था । निकलते ही वह मर गया । मरनेपर स्वर्ग-प्राप्ति होती है ; किन्तु उसे धर्म-मन्दिरसे निकाले जानेके कारण स्वर्ग-सुख नहीं मिल सके, इसीसे एक देव-दूत उसे दण्ड दिलानेके लिये निम्न-दोज़ख या पाताल लोकमें ले गया ; पर बैनेडिक्टका व्यवहार अति [illegible] था, वार्तालाप करनेकी शक्ति भी उसमें [illegible] थी ; इससे वह जहाँ कहीं भी जाता, वहाँके प्रायः सभी लोग उसे प्रिय बन्धु के नामसे सम्बोधित करते और

उसका यथेष्ट आदर करते थे। स्वर्गच्युत देव-दूत, जहाँ भी वह संन्यासी जाता, उसका हाथों-हाथ आदर करते थे। यहाँ तक कि असली देव-दूतभी दूर-देशोंसे आ आकर उस संन्यासी से मिलने-भेंटने लगे। जब मामला इस सीमा तक आ पहुँचा, तब वह पातालके सबसे गहरे देशमें ले जाया गया; फल वहाँ भी यही हुआ। संन्यासीकी मज्जागत भव्यता और उसके कोमल हृदयका, ऐसा कौन है जो प्रत्याख्यान कर सके। नरकको भी स्वर्ग बना दिया। अन्तमें देवदूत संन्यासी को लेकर स्वर्गमें गये और बोले,—"इन्हें कहीं और कोई भी दण्ड नहीं देना चाहता। अगत्या उसको दण्ड-व्यवस्थाका का हुक्म रद कर दिया गया एवं स्वर्गमें वे संन्यासी महाराज एक महासाधुके पदपर प्रतिष्ठित हुए। सौजन्यता को जय हुई। भव्यता या सौजन्यताकी शक्ति सर्वसम्मत सर्वोपरि है।

(५)

लार्ड पिटर बोरोसे, जिस वक्त उनके क्रिश्चियन हो जाने का कारण पूछा गया, तब वे कहने लगे,—"मुझ जैसे तार्किकके आगे तर्कोंकी पेश चलनी मुश्किल थी। मेरे ईसाई हो जाने के कारण एकमात्र विशप फेनेलोन हैं। उनकी सुजनताने मुझे परास्त कर दिया और मैं आपत्ति-शून्य हो, क्रिश्चियन बन गया। वे बड़े चमत्कारक व्यक्ति हैं।"

(६)

ड्यूक मार्लबोरो बड़ी खराब अँगरेजी लिखते थे। उनकी

अँगरेज़ी योग्यता भी कुछ नहीं थी। इतने पर भी उनके हाथों में बड़े-बड़े साम्राज्योंका शासन-सूत्र रहा। एक समय उनके मधुर व्यवहारका प्रभाव सारे यूरोपमें व्याप्त हो गया था। उनकी स्निग्ध हँसी और मनोहर वाणी शत्रुको भूपतित कर, उसे बन्धुमें परिणत कर देती थी।

(७)

एक सभ्य व्यक्ति अपनी षोडशी कन्याको अपने दारुण शत्रु ऐर्न-वारका न्याय-विचार देखने ले गये थे। सभ्य व्यक्ति ऐर्नको एक पक्का कृतघ्न समझते थे। किन्तु ऐर्नके मधुर व्यवहार पर कन्या ऐसी मुग्ध हुई, कि वह पिताका साथ छोड़ ऐर्नके पक्ष-पातियोंमें जा बैठी। यह देख, पिता उसपर बड़े क्रुद्ध हुए और वहाँसे उसे जबरन उठाकर एक कोठरीमें बन्दकर आये, किन्तु ऐर्नको निर्दोषिताके बारेमें कन्याके विचारोंने किसी प्रकार भी पलटा नहीं खाया। पचास सालके बाद उस लड़-कीने कहा था,—“आज तक मैं ऐर्नके मधुर व्यवहार-सम्बन्धी मायाके बन्धनोंको छिन्न न कर सकी।”

(८)

श्रीमती रेकेमियर ऐसी चमत्कारक गुण-विशिष्टा स्त्री थीं, कि उनके अङ्गुलि-निर्देशपर सारी पेरिस नगरी नाचती थी। एक समय उन्होंने पैरिसके प्रसिद्ध सेण्टरेक गिरजेके खैराती-विभागके लिये, जन साधारणके सामने अपीलकर, एक बारमें ही बीस हज़ार फ्रेंक मुद्रा एकत्रित कर ली थीं।

जिस समय वीर नेपोलियन इटालीसे लौटा और उसका स्वागत करनेके लिये एक विराट आयोजन हुआ, उस समय इस मोहिनी रमणीके दर्शनकर विपुल जनता महावीर नेपोलियनकी अभ्यर्थना करना भूल गयी।

कार्थ्य स्थानके अभिजात्य-सम्प्रदायकी दो गाड़ियाँ जिस समय अपने प्रचारका काम समाप्त करके आयीं, तब उनमेंसे एक गाड़ीके लोग रास्तेकी तकलीफोंका वर्णन करने लगे। बोले,—"रास्तेमें तूफान, वर्षा और अनेक वज्रपातोंका सामना करना पड़ा। गाड़ीके दचकोंके कारण सारी कमर चूर चूर हो गयी। यह सुन दूसरी गाड़ीके लोग जो उनके पीछेही पीछे आरहे थे, बड़े आश्चर्यान्वित हुए और बोले,—"हमें तो इन आपत्तियोंका नाम भी न सुनाई दिया।" सुनाई कैसे देता। वे जब गाड़ीमें बैठेही थे, कि मेडम दि स्टेल, श्रीमती रेकेमियर म्योज्जिमन कांसटेण्ट और श्लेगिलमें पारस्परिक वार्त्तालाप चल पड़ा था। वह वार्त्तालाप साधारण वार्त्तालाप नहीं था। उसके सुननेमें मनुष्य अपनेको भूल बैठे थे। उनलोगोंकी समस्त बातें मदकी भाँति नशीली थीं।

उस वार्त्तालापसे प्रसन्न हो श्रीमती टेम्सेने कहा था,—'यदि मैं कहींकी रानी होती, तो मैं उस दि स्टेलको अपने मनोरञ्जन तथा नैतिकज्ञान बढ़ाने के लिए नित्य अपने पास रखती।"

जो बात जोड़फे लोने ऐवेञ्जिलिनके सम्बन्धमें कही थी, वही-

उद्गार मैडम दि स्टेलके ऊपर भी घट सकता है ; अर्थात् जिस समय उन्होंने स्वर्ग-प्रयाण किया, उस समय लोगोंको ऐसी अनुभूति हुई, मानो एक अपूर्व सङ्गीत पृथ्वीसे लुप्त हो गया।

(९)

प्रत्येक स्त्रीको अपने मनुष्योंके हृदयोंमें नारी-सम्मानका ज्ञान जाग्रत करनेके लिये यथार्थ सरल और नम्र होना चाहिये। मनुष्योंके प्रसन्न करनेके लिये स्वयं हर समय प्रसन्न रहना चाहिये। विनयी और भव्य बनना इसका ज्ञान कराता है कि, सदैव अपने और दूसरोंके प्रति सन्तुष्ट रहना चाहिये।

(१०)

डिकेन्सके एक सुपरिचित व्यक्ति उनके विषयमें लिखते हैं, कि वे जब घरमें आते थे, तब ऐसा मालूम होता था, मानो कोई मूर्त्तिमान अग्नि आ रही है और जिससे ठण्डसे ठिठराये लोगोंको गर्मीका सुख प्राप्त हो रहा है।

जर्मनीके प्रसिद्ध कवि जब कभी किसी होटलमें जाते, तो उस समय भोजन-क्रियामें लगे हुए प्रायः सभी लोग अपने काँटे और छुरियोंको दूर फेंक कर, उनकी सुजनताकी तारीफ करने लग जाते थे।

मैसिडनके फिलिपने डेमस्थनीजके वक्तृता-विवरणको सुन कर कहा था,—"यदि उस समय मैं वहाँ होता, तो यह निस्सन्देह है, कि मैं अपने विरुद्ध अपने आपको अस्त्र ग्रहण करनेके लिये बाध्य हो जाता।"

वेण्डेल फिलिप्सके सुमधुर स्वर-प्रवाहके मोहको श्रोता लोक किसी भी समय छिन्न नहीं कर सकते थे। उन्हें और उनके उद्देश्योंपर घृणा होते हुए भी वे घण्टों तक उनकी वक्तृता सुनते रहते थे। उनकी वक्तृत्व-शक्तिमें असाधारण सम्मोहन-शक्ति थी। सुननेवालोंका मनोयोग उसे असामान्य समझ कर आकर्षित करता था।

अमेरिकाकी सिनेट या पार्लिमेण्ट-सभामें स्टिफेन डग-लासने अनेक अपशब्द सुनकर कहा था,—"जो बात किसी भी सभ्य पुरुषकी अपने मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये, उस बात या उन अपशब्दोंका प्रत्युत्तर देना भी असभ्यता है।

(११)

न्यूयार्ककी किसी स्त्रीने फिलेडेल्फियाको जानेवाली ट्रेनके एक डिब्बेमें सवार होनेके लिये ज्योंही भीतर पैर रक्खा, कि देखा उसमें केवल एकही आदमी बैठा है। वह बहुत मोटा ताज़ा और कुलीन मालूम होता था। स्त्री कम्पार्टमेण्टको खाली देख उसमें जाकर बैठ गयी। व्यक्तिने अपनी पाकेटसे एक चुरूट निकालकर उसे सिलगाना आरम्भ किया। यह उस स्त्रीको बहुत बुरा मालूम हुआ। वह पहले खाँसी—बादको अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। किन्तु इन सब बातोंसे कुछ भी फल न निकला। तब वह तीव्रभावसे बोली,—"मालूम होता है, आप कोई विदेशी व्यक्ति हैं, तभी शायद आपको यह नहीं कि यहाँकी ट्रेनोंमें साधारणतः

धूम-पान करनेको सख्त ममानियत है, एवं इसीसे इन ट्रेनों में एक स्वतन्त्र कमरा इसके लिये ख़ास तौरसे व्यवस्थित कर दिया गया है।" व्यक्तिने उक्त बातका मौखिक उत्तर न दे, सिगरटको बाहर फेंक दिया। थोड़ी देर बाद उस स्त्रीने जब ट्रेनके गार्डसे यह सुना, कि वह भूलसे जेनरल ग्राण्टके प्राइवेट रूममें सवार हो गयी है, तब लज्जा और विस्मयसे अवाक हो, वह तत्काल उस कम्पार्टमेण्ट से बाहर हो गयी। किन्तु अपनी जिस सुजनतासे जनरेल ग्राण्टने उस महिलासे विना कुछ कहे ही सिगरट फेंक दिया और अपने विषय और शक्तिका विना कुछ परिचय दिये ही उसे सन्तुष्ट कर दिया, यह देख महिलाको अपनी अनभिज्ञता और अविचारितापर बड़ी घृणा हुई। उहने बाहर होते समय ग्राण्ट महोदयसे क्षमा चाही; पर ग्राण्ट महोदयने उसको क्षमा-याञ्चाका केवल यही उत्तर दिया, कि अपनी ज़ातसे किसीको तनिक भी कष्ट न देना, मेरे जीवनका प्रथम लक्ष्य है, भलेही उसके लिये मुझे कष्ट उठाना पड़े।

(१२)

सुना जाता है कि महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी एक वार रेल से सफर करते हुए, किसी स्टेशन पर रातके वक्त उतरे। उसी ट्रेनसे एक नेटिव साहव भी उतरे। आपके पास असबाव का एक पुलिन्दा था, किन्तु स्टेशन पर कुली न होने के कारण आप उसे गाड़ीसे उतारनेमें असमर्थ थे।

यह प्रायः सभी जानते हैं, कि भारतीय समस्त नेताओंमें महात्मा गान्धीका वेश सोलह आना स्वदेशी रहता है। तदनु-सार उस वक्त भी आप एक गाढ़े की मिरजई, गाढ़े की धोती और एक दुपलिया टोपी ओढ़े—नङ्गे पाँव स्टेशन से बाहर जा रहे थे। नेटिव साहब ने आपको कोई कुली समझा और आवाज दी—'ओ कुली! हमारा यह असबाब बाहर ले चल।" स्वदेश-बन्धु बिना कुछ कहे उस साहबके पास आये और उसके बताये हुए पुलिन्दे को अपनी बग़लमें दाब साहब के पीछे-पीछे चल दिये। जब गेटसे बाहर आये, तो आपके स्वागत के लिये आये हुए लोगों ने आपको पहचाना; अब क्या था—चारो ओर से आदमी आपको बग़लमें दबे बोझे को लेने के लिये दौड़े। गान्धी ने उनसे कहा, "यह असबाब मेरा नहीं, इन बाबू साहब का है।" अब तो बाबू साहब उपस्थित घटना को देख बड़े हैरान हुए और तत्काल महात्मा गान्धीके चरणों में गिर क्षमा माँगने लगे। यह देख गांधी जी हँसे और बोले,—"भाई! तुमसे कुछ भी अपराध नहीं हुआ। मैं अपने देश-भ्राताओं का एक कुली ही हूँ।"

(१३)

जूलियन राल्फ, प्रेसिडेण्ट आर्थर के शिकार का विवरण टेलिग्राफ द्वारा विह्वत कर रातके दो बजे के वक्त होटलमें लौटे; उस समय उन्होंने देखा कि होटल के सब दर्वाजे बन्द है। अतः नौकरको जगानेके लिये उन्होंने और उनके एक

दो साथियोंने मिलकर एक समीपवर्त्ती दर्वाज़े पर आघात किया, तब स्वयं अमेरिकाके प्रेसीडेण्ट आर्थर ने सोतेसे उठ कर उस दर्वाज़े को खोल दिया।

यह देख राल्फ़ मनही मन बड़े कुण्ठित हुए। उन्हों ने प्रेसीडेण्ट महोदय से क्षमा माँगी। उत्तरमें प्रेसीडेण्ट महोदयने कहा—"इसमें कष्ट की क्या बात हुई? यदि मैं दर्वाज़ा नहीं खोलता, तो न मालूम आपको कितनी तकलीफें उठानी पड़तीं। इस समय होटलके सारे लोग सुखकी नींद में सो रहे हैं। मेरा काफ़्री छोकरा भी नींदमें खर्राटे ले रहा है। इस समय मैंने उसे भी जगाना उचित नहीं समझा।

(१४)

भूतपूर्व्व भारतेश्वर एडवर्ड सभ्यताके अवतार माने जाते थे। आपके साथ खानेमें शरीक होनेवाले व्यक्ति भोजनके समय सभ्यतानुसार ही समस्त नियमोंका व्यवहार किया करते थे। एक समय ऐसा हुआ, कि आपने किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को अपने भोजमें निमन्त्रित किया। निमन्त्रित हुआ व्यक्ति जिस समय खानेकी मेज़ के सामने आया, कि बिना किसीकी परवा किये सम्राट् से भी पहले चा पीने लगा। अन्य लोगों को उसका यह बर्त्ताव अच्छा नहीं लगा; पर सम्राट् ने जिस सभ्यता से उसे सचेत किया वह उल्लेखनीय है।

आपने उसके इस चा-पान पर तनिक भी भ्रूक्षेप न कर, प्रथम अन्य लोगोंसे खाने का अनुरोध किया,—पीछे अपने

आप खाना आरंभ किया। यह देख उस व्यक्ति को वहाँ के भोजनके नियमों से भले प्रकार परिचय होगया एवं उसने फिर कभी वैसी भूल नहीं की।

(१५)

संसारमें यदि लौकिक व्यवहारकी दृष्टि से देखा जाय, तो मनुष्यको समाजका शीर्ष-स्थानीय करनेवाला गुण एकमात्र सौजन्य ही है। इस गुणके प्रभावसे संसारकी कठोर से भी कठोरतम आत्माएँ अति नम्र और देशकी अग्रणी हो जाती हैं। अतएव प्रत्येक उन्नति-अभिलाषी व्यक्तिको सब गुणोंकी अपेक्षा इस गुणकी विशेष रूपसे आराधना करनी चाहिये।